श्रीश्रीगोवर्द्धनाय नमः ।

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ।

स्तोत्र-काव्यम् ।

Shri ... Mathura (U.P)

श्रीश्रीगोवर्द्धन-श्यामकुटी निवासिना
श्रीमता स्वरूपकृष्णदासेन विरचितं सम्पादितं तेनैव
कृतया दिग्दर्शिनी-समाख्यया भाषाटीकया
च समलंकृतम् ।

तच्च कानपुरान्तर्गत कृष्णनगर निवासिना भक्तप्रवर—
श्रीयुक्त रेवतीप्रसादात्मज—श्रीमद् रामस्वरूपेण
परोपकारार्थं स्वकीय द्रव्य व्ययेन मुद्रापितम् ।

श्रीश्रीगौर-गोविन्द-गिरिराज भजन परायण-
सज्जनेभ्योवितरणीय मिदम् ।

प्रथम संस्करण मेक सहस्रम् ।

अस्य पुनर्मुद्रणाद्यधिकारो ग्रन्थकर्त्ता स्वायत्ती कृतोऽस्ति ।

मूल्यम्—कृपाकटाक्ष मात्रम् ।

श्रीश्रीगोवर्द्धनाय नमः ।

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ।

स्तोत्र-काव्यम्

श्रीश्रीगोवर्द्धन-श्यामकुटी निवासिना
श्रीमता स्वरूपकृष्णदासेन विरचितं सम्पादितं तेनैव
कृतया दिग्दर्शिनी-समाख्यया भाषाटीकया
च समलंकृतम् ।

तच्च कानपुरान्तर्गत कृष्णनगर निवासिना भक्तप्रवर—
श्रीयुक्त रेवतीप्रसादात्मज—श्रीमद् रामस्वरूपेण
परोपकारार्थं स्वकीय द्रव्य व्ययेन मुद्रापितम् ।

श्रीश्रीगौर-गोविन्द-गिरिराज भजन परायण—
सज्जनेभ्योवितरणीय मिदम्

प्रथम संस्करण मेक सहस्रम् ।

अस्य पुनर्मुद्रणाद्यधिकारो ग्रन्थकर्त्ता स्वायत्ती कृतोऽस्ति ।
मूल्यम्—कृपाकटाक्ष मात्रम् ।

मुद्रक व प्रकाशक—
जगदीशप्रसाद अग्रवाल बी. कॉम.,
दी एज्यूकेशनल प्रेस,
"बाँके-विलास", सिटी स्टेशन रोड,
आगरा।

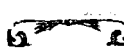

धन्यवाद!

बड़े सौभाग्य का विषय है कि, श्रीगिरिराज महाराज की अपार करुणा से श्रीगिरीन्द्र-भक्त वृन्दों के चिर प्रार्थनीय 'श्रीगिरिराज माहात्म्यम्' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो गया। जिन जिन महानुभावों ने प्रस्तुत ग्रन्थ के संशोधन, अनुवाद, नकल व प्रूफ संशोधनादिक कार्यों में मुझे समयानुसार सहायता दी है, इसके लिये उन लोगों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उपयोगी मेरे समीप कोई शब्द ही नहीं हैं; इस लिये मैं केवल सरलान्तः करण से उन लोगों को बारम्बार धन्यवाद प्रदान करता हूँ। जिला कानपुरान्तर्गत कृष्ण नगर निवासी भक्त प्रवर श्रीमान् रेवतीप्रसादजी के सुपुत्र श्रीमान् रामस्वरूपजी परोपकार के लिये अपने सम्पूर्ण द्रव्य व्यय से इस ग्रन्थ के एक हजार प्रति छपवा कर सादर वितरण कर समस्त सज्जनों के कृपा भाजन व धन्यवाद के पात्र हुये हैं। इस लिये मैं भी प्रसन्न चित्त से उनको बारम्बार धन्यवाद प्रदान करते हुये आशा करता हूँ कि, भविष्यत् में भी उनकी इसी प्रकार सज्जनों की सेवा में श्रद्धा व भक्ति बनी रहै।

विनीत—

ग्रन्थकार।

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान—

१—श्रीमान् लाला रेवतीप्रसाद रामस्वरूप,

मुः—कृष्ण नगर। पोष्ट—चौकी जरीब, कानपुर।

२—श्रीस्वरूप कृष्णदास बाबाजी,

मुः—श्यामकुटी। पोष्ट—राधाकुण्ड, मथुरा।

३—खण्डेलवाल साप वर्क्स,

जमुना किनारा, आगरा।

समर्पण पत्रम् ॥

श्रीश्रीमद् गोवर्द्धनस्थ-श्रीगोविन्दकुण्ड निवासिनः श्रीमन्माध्व गौड़ेश्वर-सम्प्रदाय विभूषणस्य निखिल वैष्णव शास्त्र निष्णात-विरक्त शिरोमणे जितासन-जितेन्द्रियादोष दर्शितादि सकल सद्गुण-रत्नराजि विराजितस्य सर्वभूते-ष्वात्मेष्ट भगवद्भाव विभावितस्य श्रीश्रीगौर गोविन्द-लीलामृत सागर निमग्न मानसस्य शताधिकायुः प्राप्तस्य भागवत परमहंसस्य विश्वविख्यात नाम्नः कोट्य युत श्रायुत श्री मनोहरदास पण्डितजी महाराज इत्याख्य पूज्य पादस्य ब्रह्मर्षि कल्प महानुभावस्य श्रीकरकमले सातिशय श्रद्धानुराग भरेणेदं श्रीश्रीगिरिराज माहात्म्यं समर्पितम् ।

सर्व सम्प्रदायि-वैष्णव दासानुदासा भासेन—

श्रीस्वरूप कृष्ण दासेनेति ॥

सर्व शक्तिमान स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का नित्य विहार स्थल श्रीमथुरा मण्डल मायातीत, अप्राकृत, प्रलयादि कालविकार रहित, चिन्मय व शुद्ध सत्त्व स्वरूप है। तथा "भूगोल चक्रे सप्तपूर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षाद् ब्रह्म गोपालपुरी हीति।" "चक्रेण रक्षिता हि वै मथुरेति।" (श्रीगोपाल तापनीश्रुतिः।) भूमण्डल में अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती व द्वारावती ये सप्तपुरी हैं उनमें से गोपालपुरी श्री मथुरा साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपा सच्चिदानन्दमयी है, एवं श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र-द्वारा सुरक्षित होने के कारण प्रलयादिक काल के प्रभाव मथुरा मण्डल को स्पर्श नहीं कर सकते हैं। तथा "पञ्च योजन मेवास्ति वनं मे देह रूपकम्" (गौतमीयतन्त्रम्)। यह पञ्च योजन परिमित वन मेरे देह स्वरूप ही है। तथा "मथुरा भगवान यत्र नित्यं सन्निहितोहरिः।" (श्रीमद्भागवतम्)। जिनके ऐश्वर्य एवं माधुर्य की तुलना प्राकृत-अप्राकृत अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड व वैकुण्ठ में ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिलती, ऐसे स्वयं भगवान् रूप, गुण व लीला माधुर्य के द्वारा सर्व मनोहारी श्रीकृष्ण जिस मथुरा में नित्य लीला-विलास परायण होकर विराजते हैं। तथा "अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी।" "अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः, पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्। सुरेन्द्र-नागेन्द्र-

मुनीन्द्र-संस्तुतां, मनोरमां तां मथुरां परा कृतिम् ॥" "अन्येषु पुण्यक्षेत्रेषु मुक्तिरेव महाफलम्। मुक्तैः प्रार्थ्या हरेर्भक्ति र्मथुरायां हि लभ्यते ॥" "नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा। यमुनां गोपकन्याश्च तथा गोपाल बालकान्। ममावतारो नित्योऽयमत्र मा संशयं कृथा इति ॥" (पद्म पुराणम्) । अहो! मधुपुरी वैकुण्ठ से भी अधिक प्रशंसनीया, श्रेष्ठा व सौभाग्यवती है। श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है कि, अहो! दुराशय मनुष्यगण मेरे सर्वश्रेष्ठ नित्यधाम श्रीमथुरा के तत्त्व को जानते ही नहीं हैं। ब्रह्मादि सुरेन्द्रगण, शेषादि नागेन्द्रगण व नारदादि मुनीन्द्रगण सर्वदा इस धाम की स्तुति करते रहते हैं। यह धाम मेरे भी मन को हरण करता है, और मेरे ही विग्रह तुल्य है। अयोध्या, मथुरा प्रभृति जो सप्तपुरियाँ मुक्तिक्षेत्र नाम से शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, उनमें से छयों क्षेत्रों में मुक्ति लाभ ही सर्वश्रेष्ठ फल है; परन्तु मुक्तपुरुषों के भी प्रार्थनीया श्रीहरिभक्ति श्रीमथुरापुरी में ही प्राप्त होती है। श्रीभगवान् की उक्ति है कि, मेरी इस मथुरापुरी को नित्या करके जानो, तथा श्रीवृन्दावन नामक वन को भी नित्य करके जानो, और श्रीयमुना, गोपकन्या व गोप बालकों को भी तसे ही नित्य रूप से जानना। इस मथुरा व वृन्दावन में मेरा नित्य अवतार है; इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना। इस प्रकार नाना शास्त्रों के प्रमाणों से श्रीमथुरापुरी अन्यान्य पुरियों से सर्वोत्कृष्टा एवं अलौकिक अनन्त महिमान्विता है। श्रीआचार्य पादों ने भी श्रीमथुरापुरी को महावैकुण्ठ करके कहा है। श्रीधाम वृन्दावन मथुरामण्डल के अन्तर्गत होने से मथुरा तत्त्व के द्वारा ही श्रीवृन्दावन का तत्त्व भी सुस्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है; अधिकन्तु श्रीवृन्दावन का प्रकाश विशेष ही श्रीगोलोक नाम से प्रसिद्ध है। दोनों धामों में केवल इतना ही अन्तर है कि, श्रीवृन्दावन में प्रकट व अप्रकट दोनों लीलाओं की स्थिति

और श्रीगोलोक में केवल अप्रकट लीला की ही स्थिति है। श्रीवृन्दावन के मुकुट-मणिस्वरूप श्रीगोवर्द्धन पर्वत श्रीकृष्णचन्द्र के अभिन्न कलेवर हैं। तथा "गोवर्द्धनश्च भगवान् यत्र गोवर्द्धनो धृतः। रक्षिता यादवाः सर्वे इन्द्रवृष्टि-निवारणात्॥ अहो गोवर्द्धनो विष्णुर्यत्रतिष्ठति सर्वदा। यत्र ब्रह्मा शिवो लक्ष्मी र्वसत्येव न संशयः॥" (स्कान्दे मथुरा खण्डे)। श्रीगोवर्द्धन साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप है। जहाँ पर श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को धारण पूर्वक इन्द्रकृत वृष्टि निवारण करके व्रजवासी गोपों की रक्षा की थी। अहो! श्रीगोवर्द्धन पर्वत धन्य हैं! जहाँ पर श्रीकृष्ण सर्वदा अवस्थान करते हैं, एवं ब्रह्मा, शङ्कर व लक्ष्मीजी भी जहाँ पर निवास करते हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है। तथा "कृष्ण स्त्वन्यतमं रूपं गोपविस्रम्भणं गतः। शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः॥" (श्रीमद्भागवतम्)। श्रीकृष्ण भी गोपों के हृदय में विश्वास उत्पादन के लिये द्वितीय पर्वत सदृश विशाल विग्रह धारण कर श्रीगोवर्द्धन के शिखर पर बैठ गये, एवं मैं गोवर्द्धन पर्वत हूँ, तुम लोगों की भक्ति से प्रसन्न होकर प्रकट हो गया हूँ, अपने-अपने अभिलषित वर माँग लो;' ऐसा कहते हुये उन लोगों के प्रदत्त प्रचुर परिमाण भोगों को आरोगने लगे। इस प्रकार श्रीगोवर्द्धन की अपार महिमा नाना शास्त्रों में भूरि-भूरि वर्णित है, तथा श्रीगिरिराजजी की तरहटी में श्री श्री-राधामाधव की दान, मान, मधुपान, जलकेलि, होरी, हिंडोला, रास व निकुञ्ज विलासादिक नाना प्रकार की लीला एवं सखाओं के साथ श्रीकृष्ण के गोचारणादिक विविध क्रीड़ा कौतुक भी नाना शास्त्रों में अशेष-विशेष रूप से वर्णित हैं। पुराणादिक में प्रसिद्ध तथा पूर्वाचार्य्यों के द्वारा प्रकटित यहाँ के बहुत से तीर्थ हम लोगों के दुर्भाग्य से क्रमशः विलुप्त हो गये हैं, और अन्ध-परम्परा से कतिपय तीर्थों के नाम परिवर्त्तन भी हो गये हैं, एवं

बहुत से तीर्थ कुछ दिन पीछे ही विलुप्त होने वाले हैं; जो कि वर्त्तमान समय सम्पूर्ण अव्यवहार्य्य रूप में केवल नाम मात्र से ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बहुकाल यावत् तीर्थानुरागी सज्जनों के अनवधान अथवा अनुसन्धान के अभाव से आज जिन-जिन तीर्थों की अति शोचनीय लुप्तप्राय अवस्था हो गई है, उन तीर्थों को देखकर सहृदय भक्तों के हृदय में आघात पहुँचता है; इसी कारण से तथा उन तीर्थों के विशेष विवरण जानने के लिये भक्तजनों के हृदय में अतिशय उत्कण्ठा उत्पन्न होने से, परम करुणार्द्र हृदय श्रीगिरिराज महाराज ने निज भक्तवृन्दों की सद्वासना पूर्त्ति के लिये अपनी अलक्ष्य करुणा शक्ति की प्रेरणा से यन्त्रचालित पुत्तलिकावत् परिचालित कर इस अयोग्य दासानुदासाभास के द्वारा परम पुण्यतम एवं निज अवयव सदृश उन तीर्थों का माहात्म्य सहित आनुपूर्विक विवरण जो कुछ लिखवाया है, सो आप लोगों के करकमलों में सुशोभित है। यद्यपि इस ग्रन्थ में वर्णित समस्त तीर्थों के महिमादि सम्बन्धीय अनुकूल प्रचुर-प्रमाण विविध शास्त्रों में विद्यमान हैं, तथापि ग्रन्थ-विस्तार के भय से मैंने उन प्रमाणों को इस ग्रन्थ में यथोचित उद्धृत नहीं किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ का यही प्रथम-संस्करण होने के कारण एवं मैं स्वयं प्रेस में यातायात कर प्रूफ संशोधन करने में असमर्थ होने के कारण इसमें मुद्रक-प्रमाद होना तो अनिवार्य है ही, तथा इस लेखक के भ्रम, प्रमादादिक दोष भी यथेष्ट मिल सकते हैं। अतः सहृदय सन्तों की सेवा में मेरा सविनय निवेदन है कि, इस लेखक को अल्पज्ञता या अनवधानता के कारण इसमें जो त्रुटी व असामञ्जस्य रह गये हों, उनके लिये निज करुणामय गुण से कृपया क्षमा करेंगे, एवं अपना दासानुदास समझकर अनुगृहीत करने के लिये यथायथ शास्त्रयुक्ति के द्वारा समझा कर सुधारने की कृपा दर्शावेंगे; जिससे द्वितीय-संस्करण

के समय उन दोषों का संशोधन हो सके। मैं आशा करता हूँ कि, इस ग्रन्थ का आस्वादन करके तीर्थानुसन्धित्सु सज्जनगण उन तीर्थों में जाकर दर्शन-स्पर्शन करते हुए उन तीर्थों के जीर्णोद्धार संस्कारादिक कार्यों में यथासाध्य चेष्टा करेंगे; जिससे प्रत्येक तीर्थ में अति शीघ्र ही उन तीर्थों के नाम व लीलासूत्र से चिह्नित एक-एक पत्थर लग जायँ, और यथासम्भव उन लुप्तप्राय तीर्थों के जीर्णोद्धार संस्कार हो सकें। तब ही मैं अपने परिश्रम को सफल करके मानूँगा। इत्यलं पल्लवितेन।

लेखक—

सर्व सम्प्रदायि-सन्तों का कृपाभिलाषी—

श्रीस्वरूप कृष्णदास

श्रीगोवर्द्धन-श्यामकुटी।

श्रीश्रीगिरिराज माहात्म्य ग्रन्थ का सूचीपत्र।

अध्याय विषय

१. प्रथम अध्याय में—इष्टदेव की वन्दना, श्रीमानसीगङ्गा की उत्पत्ति तथा श्रीहरिदेवजी का माहात्म्य, एवं ब्रह्मकुण्ड, श्री-मनसादेवी, ऋणमोचन कुण्ड, पापमोचन कुण्ड, चन्द्रसरोवर, दानघाटी, दाननिवर्त्तन कुण्ड, श्रीगोपालजी का प्रकट वृत्तान्त, आनोर, सङ्कर्षण कुण्ड, गौरीतीर्थ, नीपकुण्ड व गन्धर्व कुण्ड का माहात्म्य वर्णन।

२. द्वितीय अध्याय में—श्रीगोविन्द कुण्ड, ढोका दाऊजी, पूछरी, पुच्छ कुण्ड, अप्सरा कुण्ड, श्रीलोठाजी, श्यामढाक, श्री-राघव पण्डितजी की गुफा, इन्द्र कुण्ड, सुरभी कुण्ड, कदम्ब-खण्डी, ऐरावत कुण्ड, ऐरावत व सुरभी तथा श्रीकृष्ण के करकमल व चरणकमल के चिह्न युक्त शिला, हरजी कुण्ड, शृङ्गार मण्डल, श्रीनाथजी के मन्दिर, श्रीमुखारविन्द, यती-पुरा, बिलछू कुण्ड, सखीतरा, उद्धवकुण्ड, शिवोखरि, मालीहारी कुण्ड का माहात्म्य वर्णन।

३. तृतीय अध्याय में—श्रीराधाकुण्ड व श्रीकृष्ण कुण्ड, श्री जाह्नवा घाट, श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी की समाधि, श्रीराधा कुण्ड व श्रीकृष्ण कुण्ड के जीर्णोद्धार संस्कारादि वृत्तान्त, मानस पावन घाट, गोस्वामी वर्गों की भजन कुटी व समाधि, श्रीगिरिराजजी की जिह्वा, भानुखरि, ललिता कुण्ड, तमाल तला, वज्रनाभ कुण्ड, श्रीराधा कुण्ड, व श्री कृष्ण कुण्ड का उत्पत्ति वृत्तान्त, लगमोहन स्थान व कुण्ड, संगम पर रत्नवेदी, श्रीकुण्डेश्वर महादेव, कुसुम सरोवर,

अध्याय विषय

श्रीउद्धवजी, वहाँ पर द्वारिका महिषियों का श्रीकृष्ण साक्षात्कार वृत्तान्त, श्रीअशोक मालिनीदेवी, व श्रीनारद कुण्ड का माहात्म्य, वहाँ पर श्रीनारदजी का भजन तथा श्रीभगवत् दर्शन वृत्तान्त वर्णन।

४. चतुर्थ अध्याय में—श्यामकुटी व रत्नकुण्ड का माहात्म्य, तमाल वृक्ष, रासस्थली, रत्नसिंहासन व वहाँ पर श्री श्रीराधाकृष्ण के लीला प्रसंग में शंखचूड़ बध वृत्तान्त एवं पुष्प चयन प्रसंग में श्री श्रीराधाकृष्ण की मिलन लीला वर्णन।

५. पञ्चम अध्याय में—वसन्त ऋतु में श्यामकुटी पर श्रीश्रीराधाकृष्ण के मिलन व रास विलास, श्री श्रीनन्द सुताष्टक, रास के अन्त में भोजन, शयन व निकुञ्ज विलास वर्णन।

६. षष्ठ अध्याय में—श्यामकुटी के पास वादिनी शिला व श्रीकृष्ण के वाम चरण का चिह्न, ग्वाल पोखरा, वहाँ पर सखाओं के द्वारा नैवेद्य लूटने का वृत्तान्त, श्रीहरि गोकुल तीर्थ, किलोल कुण्ड, इन्द्रध्वज तीर्थ, पञ्चतीर्थ, मुकुट शिला चक्रतीर्थ, श्रीचक्रेश्वर महादेव, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु व श्रीनित्यानन्द प्रभुजी का मन्दिर, दण्डवती परिक्रमा व श्रीगिरिराजजी में पिण्ड प्रदान का माहात्म्य वर्णन।

७. सप्तम अध्याय में—श्रीगिरिराजजी का जन्मादि वृत्तान्त व परमोत्कर्ष वर्णन।

८. अष्टम अध्याय में—श्रीगिरिराजजी का अपरिमित प्रभाव वर्णन।

९. नवम अध्याय में—उपदेश, प्रार्थना, दैन्य व विज्ञप्ति वर्णन।

१०. दशम अध्याय में—परम उत्कण्ठामयी प्रार्थना वर्णन।

श्री श्रीगिरिराज-महाराज की आरती।

त्रिसन्ध्या आरती कीर्त्तन।

आरति श्रीगिरिराज की।
वृन्दावन-सिरताज की ॥ टेक ॥

जय गोवर्द्धन, गोकुल बान्धव,
सुर-मुनीश गण दुर्गम वैभव,
महिमानिधि, गुणनिधि, करुणार्णव,
राखत भकतन लाज की ॥ आ० ॥

कलि-कलेस हर, भव-भय नाशक,
ज्ञान विरति विज्ञान विकाशक,
पाप-ताप-अपराध विनाशक,
जय गरीब-नेवाज की ॥ आ० ॥

ऋद्धि सिद्धि सब मुक्ति विधायक,
प्रेम भकति सेवा सुख दायक,
गिरीश-नायक, सब विधि लायक,
करत सिद्ध सब काज की ॥ आ० ॥

त्रिभुवन पावन, पतित उधारण,
सब सङ्कट झट करत निवारण,
शैल रूप में हरि, जग तारण,—
हित पद-पदम जहाज की ॥ आ० ॥

जय शरणागत जनके पालक,
भकति विरोधी असुरन घालक,
सदा सनातन धर्म सँभालक,
सकल देव-अधिराज की ॥ आ० ॥

सुर-मुनि-नर-नारी गण नाचत,
मुरज झाँझ ढफ दुन्दुभि बाजत,
स्वरूप कृष्ण दास यश गावत,
पूजित जगत समाज की ॥ आ० ॥

बोल श्रीगिरिराज महाराज की जय,
बोल श्रीराधे ॥

शुद्धि-पत्र ।

[पाठकवृन्द कृपा करके पहले इन भूलों का संशोधन कर लीजियेगा ।]

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	टोका	टीका
६	२१	ध्रवम्	ध्रुवम्
८	६	सखि	सखे
६	२	द्वराह	द्वाराह
६	२३	ग्रह	गृह
११	१३	यह	यहाँ
११	६	को	की
१२	१३	की की	की
१३	३	मान्द	मानन्द
१३	४	हा	हो
१३	७	मरा	मेरा
१३	६	का	को
१३	१६	का	को
१४	२८	लाग	लोग
१६	१३	को	की
१७	६	नैऋत्य	नैर्ऋत
३५	६	यथा	तथा
४०	१६	स्वामी	गोस्वामी
४१	१७	खारि	खरि
४३	१२	किल्वषा	किल्विषा
४७	२४	सब	सर्व
४६	१७	निश्चिन्त	निश्चित
५०	४	विवि	विविध

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	१४	जा	जो
५६	१२	कुञ्जाग्दोष्ठं	कुञ्जाद्गोष्ठं
६१	३	करके	करने
६५	१८	करटे	करते
६४	१६	कुञ्ज	कुञ्ज
६४	२१	सश्य	पश्य
६४	२५	रा	द्वारा
६५	५	प्रीत	प्रीति
६५	२२	तीर्थश्चैक	तीर्थञ्चैक
६६	२०	बँधे	बँधे हुये
७१	११	भान	भानु
७२	१८	क्षिप्रें	क्षिप्रं
७२	६	भिह	मिह
७४	१३	इत्यं	इत्थं
७६	१४	विावध	विविध
७७	३	मँजीरा है	मँजीरा
७७	११	जातिश्च	जातिञ्च
८२	३	करा	करो
८२	१३	है	हैं
८६	१७	वान	वाम
८७	२४	इनका	इनको
८८	६	का	को
८६	२३	का	को
६१	६	सुव	सुख
६१	१०	किकोल	किलोल
६२	११	निर्माण	निर्वाण
६२	१२	अस्त्येंव	अस्त्येव

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९३	२	यत्रेब	यत्रैव
९५	२२	प्रणमेनसहितां	प्रणामेनसहितां
९८	१७	लभतं	लभते
९९	५	वांर	वारं
९९	१७	मध्येयऽ	मध्येऽ—
१००	१४	प्रमाण	प्रणाम
१००	१८	मे	से
१००	७	गिर	गिरि
१०१	२०	चोल	चलो
१०१	२६	द्वीपमें	द्वीपसे
१०१	२८	भोचन	मोचन
१०४	४	नयातो	नायातो
१०५	१७	ऽममि	ऽयमि
१०७	७	नेहीं	नहीं
११२	१३	गण	गणा
१३४	४	मरम्	भरम्
१३७	१	पञ्चमो	दशमो
१३७	३	त्यक्ता	त्यक्त्वा
१४०	१	गिश्रीश्रीरिराज	श्रीश्रीगिरिराज
१३०	१५	कृपा	कृपां
१४२	२	कलुषादा	कलुषादी
१४२	२	प्रणष्ठान	प्रणष्टान्
१४२	५	वर्णित	वर्णितं
१४२	६	ब्रह्म	और ब्रह्म

कहीं-कहीं जो श्लोक के प्रथम व तृतीय लाइन के अन्त में विराम का। ऐसा चिह्न है, वह अशुद्ध है।

श्रीश्रीगुरवे नमः ।

श्रीश्रीमद् गोवर्द्धनाचलाय नमः ।

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥

महेन्द्र-गर्वाचल-चूर्णितुं यो
गिरीन्द्रमुत्तोल्य करेण धृत्वा ।
व्रजेन्द्र-वर्य्यस्य मुदं वितेने
गोविन्ददेवं तमहं प्रपद्ये ॥१॥

दिग्दर्शिनी भाषा-टीका—जो देवराज इन्द्र के गर्वरूपी पर्वत को चूर्ण करने के लिये श्रीगिरिराजजी को उठाकर अपने एक हाथ पर धारण करके व्रजेन्द्रवर्य श्रीमन्नन्द महाराज के परमानन्द को विस्तार किये थे; ऐसे श्रीगोविन्ददेव के चरणारविन्द की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

गायन् यो निजपार्षदैः परिवृतःसन्तप्त हेमं वपु-
र्बिभ्रत्ताण्डवकैर्नटन् भजहरेकृष्णेति जल्पन्मुहुः ।
सिञ्चन्नश्रुजलैः स्वभक्तनिवहं प्रेम्णाप्लुवोऽप्लावयत्
सन्तंनौमि शचीसुतं तमनिशं गोवर्द्धन स्यान्तिके ॥२॥

जो अपने परिकर वृन्द के द्वारा परिवेष्टित होकर श्रीहरिनाम संकीर्त्तन के साथ उद्धत नृत्यकला विस्तार करते हुए बारम्बार जीवों को "हरेकृष्ण भजो हरेकृष्ण भजो" इस प्रकार श्रीहरि-नाम महामन्त्र का उपदेश करते हुए, एवं अश्रु जल के द्वारा निज भक्तवृन्द को स्नान कराते हुए प्रेमामृत के द्वारा समग्र पृथ्वी को प्लावित कर रहे हैं; सोई श्रीगिरिराजजी के समीप में विराजमान सम्यक् तपे हुए काञ्चन कान्तिधारी श्रीश्रीशचीनन्दन गौराङ्ग महाप्रभुजी को मैं निरन्तर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जयति स गुरुराद्यः श्रीशचीनन्दनाख्यो
मम निरवधि सोऽद्वैताख्य शिक्षागुरुश्च ।
अशरण जनबन्धो र्ज्ञानभक्त्यादि सिन्धो—
र्निरतिशय दयाल्वोः पादपद्मांशु मीड़े ॥३॥

नित्यधाम गत श्रीश्री १०८ श्रीपाद श्रीलशचीनन्दनदास बाबाजी नामक मेरे दीक्षागुरु महाराज निरन्तर जययुक्त हो रहे हैं। तथा श्रीश्री १०८ श्रीपाद श्रीलअद्वैतदास बाबाजी नामक मेरे शिक्षागुरु महाराज भी जययुक्त हो रहे हैं। अथवा "जयत्यर्थेन नमस्कार आक्षिप्यते ।" उन दोनों के प्रति मेरा नमस्कार है। वे कैसे हैं, कि जो मादृश अनाथ जनों के अहैतुक हितकारी बन्धु एवं ज्ञान, भक्ति व वैराग्यादि निखिल सद्गुण-रूप रत्नों के समुद्र स्वरूप, तथा निरतिशय करुणामय हैं; ऐसे श्रीश्री गुरुयुगल के श्रीचरण कमलस्थित किरण-कणिका समूह की मैं निरन्तर स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

वन्दे गोविन्द-गो-गोप-गोपिकानन्द वर्द्धकम् ।
श्रीगोवर्द्धन-पादाब्जं सर्वसिद्धि प्रदायकम् ॥४॥

जो श्रीगोविन्द, गो, गोप एवं गोपिकाओं का परमानन्द वर्द्धन करते हैं, तथा निजशरणागत जीवों को सर्व प्रकार सिद्धि प्रदान करते हैं; ऐसे श्रीगिरिराज महाराज के चरणारविन्द को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

अगाधं गिरिराजस्य माहात्म्यं सिन्धुवद् भृशम् ।
कणमात्रं प्रवक्ष्यामि तद्भक्तजन-तुष्टये ॥५॥

श्रीगिरिराजजी का माहात्म्य अगाध समुद्र तुल्य अतिशय दुरवगाह होने पर भी, मैं श्रीगिरिराजजी के भक्तजनों के सन्तोषार्थ उस महिमा समुद्र का अति सूक्ष्म कणमात्र ही वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

श्रूयतां गीयतां भक्ता भवद्भिश्चिन्त्यतां सदा ।
इदं गिरीन्द्रमाहात्म्यं भक्त्या संस्वाद्यतां मुदा ॥६॥

हे भक्त वृन्द ! आप लोग इस गिरिराज-माहात्म्य नामक ग्रन्थ का सर्वदा भक्तिपूर्वक श्रवण कीजिये व कीर्त्तन कीजिये, एवं निरन्तर चिन्तन कीजिये तथा आनन्द के साथ उत्तम रूप से आस्वादन कीजिये ॥ ६ ॥

भवन्ति बहुधा लीला गोवर्द्धनतटेऽनिशम् ।
को वा तद्वर्णितुं शक्तो राधाकृष्ण-कृपां विना ॥७॥

इन श्रीगिरिराजजी की तरहटी में निरन्तर नाना प्रकार की लीलाएँ होती रहती हैं। श्रीश्रीराधाकृष्ण की करुणा विना उन लीलाओं के वर्णन करने में कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥ ७ ॥

हरेःक्रीड़ापात्री ममृत फलदात्रीं गिरिवरे
स्वयम्भूरुद्रादीड़ितमहितमाहात्म्यवलिताम् ।

लसत् पद्माद्याकर्षित मधुप-गुञ्जार मुखरां
मनोगङ्गां वन्दे दुरितचय हार्य्यम्बु कणिकाम् ॥८॥

जो श्रीगिरिराजजी में श्रीकृष्ण-क्रीड़ा की आश्रय स्वरूपा और मोक्ष या अविनश्वर फल को देनेवाली हैं, तथा ब्रह्मा व शङ्करादि देवतागण जिनकी स्तुति व पूजा सेवा करते रहते हैं, एतादृशी महा महिमाशालिनी हैं; प्रफुल्लित कमल व कुमुदादि पुष्पों की सुगन्धि द्वारा आकर्षित भौंराओं के गुञ्जार से जो मुखरित हो रही हैं, और जिनका एक-एक जल कण समस्त पाप तापों का नाश करने वाला है; ऐसी श्रीमानसी गङ्गाजी को मैं भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ ॥ ८ ॥

स्पर्शमात्ररोगशोकताप पुञ्जनाशिनी
स्वर्णदीझरेषुकृष्णमज्जनाच्च यज्जनिः ।
नाव्यकेलितृष्णकृष्णहार्दपूर्त्तिदायिनी
सा पुनातु मानसी त्रिमार्गगाघ हारिणी ॥९॥

जिनके स्पर्श मात्र से ही रोग, शोक व समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं, एवं मन्दाकिनी गङ्गा के झरना के जल में श्रीकृष्ण-चन्द्र के अभिषेक सुसम्पन्न होने से, उस जल के द्वारा जिनकी उत्पत्ति है, और जो नौकाविलास के लिये सतृष्ण श्रीकृष्णचन्द्र के मनोरथों की पूर्त्ति करने वाली हैं, ऐसी श्रीमानसी गङ्गाजी सर्वथा हम लोगों को पवित्र करें। [श्रीमानसी गङ्गाजी के उत्पत्ति सम्बन्ध में ऐसी जनश्रुति है, कि एक समय श्रीमन्नन्दादि गोपगण, श्रीयशोदादि गोपिकाओं को साथ लेकर श्रीभगवती भागीरथी गङ्गाजी में स्नान करने के निमित्त शुभ यात्रा करके

रात्रि को श्रीगोवर्द्धन के समीप में निवास किये हुए थे। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने मन में ऐसा विचार किया, कि "श्रीव्रजभूमि की महामहिमा में अतीव लुब्धचित्त होकर इस व्रज में समस्त तीर्थ विराजमान हैं, परन्तु व्रजवासियों को इस सम्बन्ध में कुछ भी अवगत नहीं है। जैसा भी हो, इस विषय में मुझे ही समाधान करना पड़ेगा।" सत्य-सङ्कल्प श्री भगवान के मन में ऐसा विचार आते ही, श्रीगङ्गाजी मकरवाहिनी रूप में तत्क्षणात् सबके सामने प्रकट हो गईं। अकस्मात् उनको देखते ही व्रजवासीगण अत्यन्त विस्मित होकर आपस में नाना-प्रकार तर्कवितर्क करने लगे। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने व्रजवासियों से कहा, कि "श्रीव्रजभूमि की सेवा करने के लिए ही समस्त तीर्थ व्रजमण्डल में विराजमान हैं। आप लोग श्रीगङ्गाजी में स्नान करने के लिये व्रज के बाहर जा रहे हैं, ऐसा जानकर ही पतित-पावनी श्रीगङ्गाजी आज आप लोगों के सामने प्रकट हो गईं हैं। अतएव आप लोग शीघ्र ही श्रीगङ्गाजी के स्रोत में स्नानादिक कार्य सम्पादन कीजिये। आज से यह तीर्थ श्रीमानसी गङ्गा नाम करके सर्वत्र विख्यात होगा। कार्त्तिकी अमावस्या के दिन ही इन श्रीगिरिराजजी में श्रीकृष्णचन्द्र के मन से श्रीमानसी गङ्गाजी प्रकटित हुईं हैं। इसलिये प्रतिवत्सर दीपावली के उत्सव उपलक्ष में श्रीमानसी गङ्गा का स्नान, तथा श्रीगिरिराज महा-राज की दण्डवतो परिक्रमा का कार्य महा समारोह के साथ सुसम्पन्न होता आ रहा है। इस प्रकार संक्षेप में श्रीमानसी गङ्गा की उत्पत्ति वृत्तान्त समाप्त।] ॥ ६ ॥

दोहा—हरि-मनसे भवमानसी,—गङ्गा जहँ गिरिराज।
होत मुक्ति जल परस से, नाशत पाप समाज॥

दोहा—बिच-बिच मानसगङ्ग में, बहत दूध की धार ।
महाभाग जो देखि सो, होत प्रेम–मतवार ॥

रम्यतीर रत्नबद्ध कुट्टिमालि भूषिता
स्वच्छनीर नीरजादि पुष्पगन्धरूषिता ।
हंस चक्रवाक सारसादि पक्षि कूजिता
सा पुनातु मानसी त्रिमार्गगाज-पूजिता ॥१०॥

जिनके चारों ओर के तट रत्नों के द्वारा बाँधा हुआ घाट तथा कुट्टिमा (बुर्जा) समूह के द्वारा सुशोभित है, और जिनके निर्मल जल, कमल व कुमुदादि कुसुमों के सुगन्ध द्वारा परिव्याप्त है, एवं जिनमें हंस, चक्रवाक व सारसादि जल-चर पक्षी समूह कलकल कूजन कर रहे हैं ; ऐसी ब्रह्मादिकों से सेवित श्रीमानसी गङ्गाजी सर्वथा हम लोगों को पवित्र करें ॥१०॥

नाव्या रूढ्वैव यां तत्तुं गोवर्द्धन-विहारिणी ।
दृष्ट्वा नावं चलां भीत्या संस्तौति कृष्ण–नाविकम् ॥११॥

श्रीगोवर्द्धन विहारिणी श्रीराधिकाजी नाव में बैठकर जिस मानसी गङ्गा को पार होवे समय नाव को डगमगाती देखकर डरती हुई श्रीकृष्ण रूपी नाविक (मल्लाह) की स्तुति करती हैं ॥११॥

अश्वमेधादि यज्ञेन यत्फलं लभते नरः ।
मनोगङ्गावगाहेन तस्माच्छतगुणं ध्रुवम् ॥१२॥

अश्वमेध इत्यादि यज्ञों के द्वारा मनुष्य जिन फलों का लाभ करते हैं, श्रीमानसी गङ्गा में स्नान के द्वारा उससे सौ गुण अधिक फलों का लाभ करते हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं ॥१२॥

तस्यां मानसगङ्गायां स्नात्वोच्चमणिमन्दिरे ।
हरिदेवं नरा दृष्ट्वा सर्वसिद्धिं प्रयान्ति वै ॥१३॥

उस मानस गङ्गा में स्नान करके उसके किनारे पर अति उच्च मणिमय मन्दिर में विराजमान श्रीहरिदेवजी का दर्शन करके मनुष्य गण सर्व प्रकार सिद्धि को निस्सन्देह रूप से प्राप्त करते हैं ॥१३॥

भाद्रेमासि सितेपक्ष एकादश्यामुपोषितः ।
स्नात्वा मानस गङ्गायां हरिदेवस्य दर्शनम् ॥१४॥
कृत्वा प्रदक्षिणं कुर्य्या द्गिरिराजस्य यो नरः ।
ध्रुवं स फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥युग्मकम्॥१५॥

जो भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में श्रीएकादशी के दिन उपवास रहते हुये मानसी गङ्गा में स्नान कर श्रीहरिदेवजी के दर्शनानन्तर श्रीगिरिराजजी की प्रदक्षिणा करते हैं; सो निश्चय करके राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं ॥१४।१५॥

तथाहि श्रीमद्वाराहमहापुराणेः—

स्नात्वा मानसगङ्गायां दृष्ट्वा गोवर्द्धने हरिम् ।
अन्नकूटं परिक्रम्य किं पुनः परिशोचति ॥१६॥

मानसी गङ्गा में स्नान करके श्रीगोवर्द्धन में श्री हरिदेव जी का दर्शन एवं अन्नकूट की प्रदक्षिणा करके भी, हे मन ! तुम फिर क्यों परिताप कर रहे हो ? ॥१६॥

तथाहि श्रीमद्वाराह महापुराणेः—

गोवर्द्धनं परिक्रम्य दृष्ट्वा देवं परं हरिम् ।
राजसूयाश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्य संशयम् ॥१७॥

श्रीगोवर्द्धन की परिक्रमा करके परमदेव श्रीहरिदेवजी का दर्शन करने वाला मनुष्य निःसन्देह राजसूय व अश्वमेध यज्ञों के फल को प्राप्त होता है ॥१७॥

नाद्राक्षीस्त्वं परमरुचिरे ब्रह्मकुण्डस्य तीरे
दिव्यं किं श्रीगिरिवरधरं प्रेमदं कर्हि धिक्त्वाम् ।
शीघ्रं वाञ्छा सफल विधये कल्पवृक्षादुदारं
गत्वा नेत्रं सुफलय सखे वीक्ष्य देवाधिदेवम् ॥१८॥

हे सखि ! तुमने क्या कभी भी परम मनोहर ब्रह्मकुण्ड के किनारे पर प्रेमधन के देने वाले दिव्य कान्तियुक्त श्रीगिरिवरधारी के दर्शन नहीं किये ? तो तुमको धिक्कार है । अब तुम शीघ्र ही जाकर जो कि जीवों के सर्व प्रकार मनोरथों को सफल करने के लिये कल्पवृक्ष से भी परम उदार हैं; ऐसे देवाधिदेव श्रीहरिदेवजी के दर्शन करके अपने नेत्रों को सुफल कर लेओ ॥१८॥

जय जय हरिदेवापारसौन्दर्य्यसिन्धो
जय जय पशुपालाम्भोज मोदोष्ण रश्मे ।
जय जय निजकान्तानेत्रचक्रैकबन्धो
जय जय हरिभक्त-द्रोहिमातङ्ग-सिंह ॥१९॥

हे अपार सौन्दर्य के समुद्र स्वरूप ! आपकी जय हो जय हो । हे पशुपाल रूप कमलों के आनन्द प्रदानकारी दिवाकर तुल्य ! आपकी जय हो जय हो । हे निज प्रियावर्गों के नयन रूप चक्र वाक समूह के दुःख दूर करने के लिये एकमात्र बन्धु सूर्य्य स्थानीय ! आपकी जय हो जय हो । हे हरिभक्त-द्रोही रूप हस्ति-समूह के दमन करने के लिये सिंह सदृश ! हे श्रीहरिदेव ! आपकी जय हो जय हो सदा जय हो ॥१९॥

तथाहि श्रीमद्वराहमहापुराणे—

पश्चिमे तु हरिं देवं गोवर्द्धन-निवासिनम्।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं किं मनः परितप्यते ॥२०॥

यह पद्माकृति मथुरा के पश्चिम दिशा में श्रीगोवर्द्धन पर्वत पर श्रीहरिदेवजी विराजमान हैं। उन देवादिदेव ईश्वर का दर्शन करके हे मन! तुम फिर क्यों परिताप कर रहे हो ॥२०॥

तस्याग्रे कृष्णचैतन्यो हरिदेवस्य दर्शनात्।
प्रेमोन्मत्तोऽकरोन्नृत्यं निवासञ्चैकशर्वरीम् ॥२१॥

इह कलियुग-पावनावतार भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुजी श्रीहरिदेवजी के दर्शन करते ही प्रेम में उन्मत्त होकर उनके सामने ही अतिशय नृत्य किये थे, एवं वहाँ पर एक रात्रि निवास भी किये थे ॥२१॥

गङ्गाया दक्षिणे यत्र ब्रह्मणाऽऽराधितोऽच्युतः।
तत्रास्ति ब्रह्मकुण्डं यद्भुक्ति-मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥२२॥

श्रीमानसी गङ्गा के दक्षिण किनारे पर श्रीहरिदेवजी के वायुकोण में ही जहाँ पर श्री ब्रह्माजी ने श्रीकृष्णचन्द्र की आराधना की थी, वहाँ ही ब्रह्मकुण्ड नामक एक कमनीय कुण्ड विराजमान है। जो कुण्ड मुक्तिकामी मनुष्यों के लिये मुक्ति, तथा भुक्तिकामी मनुष्यों के लिये स्वर्गादि भोग सुख प्रदान करते हैं। (कुण्ड के ईशान कोण में श्रीब्रह्माजी का दर्शन है) ॥२२॥

स्वगणैर्मनसादेवी तत् प्राच्यामस्ति मन्दिरे।
या ददात्यखिलामीष्टं ग्रहस्थानां स्वसेविनाम् ॥२३॥

उस ब्रह्मकुण्ड के पूर्वदिशा स्थित मन्दिर में निज गणों के साथ श्रीमनसादेवी विराज रही हैं । जो देवी अपनी सेवा करने वाले सकामी गृहस्थों के सर्व प्रकार मनोवाञ्छित फलों को प्रदान करती हैं । (श्रीमनसा देवी के पूर्व दिशा में मानसी गङ्गा के घाट पर छोंकरा वृक्ष के नीचे श्रीपाद विठ्ठलनाथजी की बैठक है ॥२३॥

ऋणमोचनकुण्डं यद्धरिदेवस्य दक्षिणे ।
अस्ति तस्मिन्नराः स्नात्वा मुच्यन्त ऋण-पातकात् ॥२४॥

श्रीहरिदेवजी के दक्षिण दिशा में परिक्रमा के बाईं तरफ जो ऋण मोचन नामक एक कुण्ड है । उस कुण्ड में स्नान करके मनुष्यगण ऋण पातकों से विमुक्त हो जाते हैं । उस कुण्ड के उत्तरांश में पास ही परिक्रमा के बाईं तरफ 'धर्म रोचन' नामक एक कुण्ड लुप्त हो गया है । अभीतक वहाँ पर पत्थर में धर्मरोचन कुण्ड का नाम मौजूद है ॥२४॥

तद्दक्षिणे चकास्त्यारात् कुण्डं हि पापमोचनम् ।
स्नानं कृत्वा नरो यस्मिन् सर्वपापाद्विमुच्यते ॥२५॥

उस ऋण मोचन कुण्ड के दक्षिण दिशा में पास ही परिक्रमा के बाईं तरफ पापमोचन नामक एक कुण्ड (वर्त्तमान नाम निवर्त्त-कुण्ड) सुशोभित है । जिस कुण्ड में स्नान करके मनुष्य निश्चित निखिल पातकों से विमुक्त हो जाता है ॥२५॥

तद् याम्यां कतिदूरगं हरिजनैरासेवितं प्रेष्टदं
स्वच्छागाधजलैर्भृतं विकसिताब्जाद्यैर्दृशांहारकम् ।
मण्याबद्धतटं सुवृक्षनिकरैश्चावेष्टितं चन्द्रवद्
वन्दे चन्द्रसरोवरं जयति यत्तीरे परासौलि वै ॥२६॥

उस पाप मोचन कुण्ड के दक्षिण दिशा में एक मील दूर पर चन्द्रसरोवर नामक एक सरोवर विराजमान है। जिसके चारों ओर के तट मणियों के द्वारा बँधे हुए हैं, तथा उत्तम वृक्ष समूह के द्वारा परिवेष्टित हैं। जो सरोवर स्वच्छ एवं अगाध जल से परिपूर्ण है, तथा अपने में विकसित कमल-कुमुद इत्यादि जलजात पुष्पों की शोभा द्वारा दर्शकों के नेत्रों को अपहरण कर रहा है। जिसके किनारे पर श्रीहरि-भजन परायण भक्तजन निवास करते हैं, तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को बसन्त-रासस्थली प्रसिद्ध परासौली ग्राम (वर्त्तमान नाम महम्मदपुर) जययुक्त हो रहा है; ऐसे जीवों के सर्व प्रकार मनोवाञ्छित फल को देने वाले चन्द्रमा के सदृश चन्द्र सरोवर को मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ। (यह पर मन्दिर में श्रीदाऊजी व श्रीचन्द्रविहारीजी का दर्शन है, और श्रीचन्द्रावलीजी की बैठक व श्रीपाद वल्लभाचार्य महाप्रभुजी की बैठक एवं श्रीपाद विठ्ठलनाथजी की बैठक तथा श्रीपाद गोकुलनाथजी की बैठक है, और प्रसिद्ध पदकर्त्ता श्रीपाद सूरदासजी की भजन कुटी है। यहाँ एक बाजनी शिला है, जिसके बजाने से आवाज निकलती है।) ॥२६॥

ऋणमोचनकुण्डस्य पश्चिमे दानघट्टके ।
दानलीला स्थले दानविहारिणं भजेष्टदम् ॥२७॥

पूर्व कथित ऋणमोचन कुण्ड के पश्चिम दिशा में जो दानघाटी नामक श्रीकृष्णचन्द्र की एक दानलीला स्थली है, वहाँ पर जीवों के मनोवाञ्छित फल को देने वाले श्रीदान विहारीजी का दर्शन करो व भजन करो, अर्थात् काय-मन बचन से सेवा करो। (दानघाटी के आगे श्रीगिरिराजजी के ऊपर एक अति प्राचीन श्रीदानीरायजी का मन्दिर है; वहाँ इस समय सेवा-पूजा भी नहीं होती है।) ॥२७॥

दाननिर्वर्त्तनं कुण्डं दूरे तस्यास्ति दक्षिणे ।
विज्ञा वदन्ति तत्रैव गोपालः प्रकटोऽभवत् ॥२८॥

उस दानघाटी के दक्षिण दिशा में परिक्रमाके बाईं तरफ एक क्रोश दूर में दाननिर्वर्त्तन नामक एक कुण्ड है। विशेषज्ञ पण्डित गण ऐसा कहते हैं कि, वहाँ पर श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीजी के द्वारा श्रीगोपालजी प्रकट हुए थे। (यह कुण्ड आनोर ग्राम के पूर्व दिशा में थोड़ी दूर पर है)। पहिले उसके आस-पास में कैम वृक्ष यानी कदम्ब वृक्ष का वन था, इसलिये वर्त्तमान ग्रामवासी उसको 'कैमको' कहते हैं। वहाँ पर श्रीगोपालजी का प्रकट वृत्तान्त 'श्रीचैतन्य चरितामृत' ग्रन्थ में ऐसा वर्णित है कि, श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी एक समय श्रीव्रजमण्डल में आकर भ्रमण करते-करते श्रीगोवर्द्धन के समीप में पहुँचे। वहाँ पर गिरि-कानन की की कमनीय छटा को देखकर वे प्रेम में मत्त होकर दिवारात्रि का ख्याल भूलकर मन्त्रमुग्ध से विचरने लगे। एक दिन श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा करते हुए श्रीगोविन्द कुण्ड पर आकर स्नान करके एक वृक्ष के नीचे निवास किये। पुरी महाराज की अयाचित वृत्ति थी। प्रेमामृत में तृप्त रहने के कारण क्षुधा तृष्णा उनको बाधा नहीं करती थी। सन्ध्या के समय वे उस वृक्ष के नीचे बैठे भगवन्नामों का उच्चारण कर रहे थे। उस समय उन्होंने क्या देखा, कि एक 'नव अम्बुद-अञ्जन-इन्द्रनीलमणि-कान्ति विनिन्दक रूप, श्यामवर्ण नव किशोर अवस्था का बालक अनूप' हाथ में दूध का पात्र लिये उनकी ओर आ रहा है। उसके सब ही अङ्ग में विद्युत् से भी दीप्तिमान् अद्भुत सौन्दर्य्य प्रकाशित हो रहा था। उसने दुग्धपात्र को आगे रखकर बड़े ही मधुर स्वर में कुछ हँसते हुए कहा—"महात्माजी! भूखे क्यों बैठे हो? माँगकर क्यों नहीं खाते हो? लो इस दूध को

पी लो।" बालक का सौन्दर्य्य देखकर तथा सुमधुर वचनों को सुनकर पुरीजी परमानन्द में मग्न होकर अपनी भूख प्यास को भूल गये। तदनन्तर पुरीजी पूछने लगे कि "तुम कौन हो तुम्हारा निवास कहाँ है, और तुम्हें कैसे पता चला कि मैं यहाँ भूखा बैठा हूँ?" बालक ने हँसते हुए कहा—"मैं जाति का ग्वाला हूँ, मेरा घर इसी गाँव में है। गोपियाँ अभी जल भरने के लिये यहाँ आईं थीं, वे आपको यहाँ बैठे हुए देख गई थीं, और उन्होंने घर जाकर मुझसे दूध दे आने को कह दिया था। इसलिये मैं जल्दी से गैया को दुहकर आपके लिये दूध लाया हूँ।" हमारे यहाँ का नियम ऐसा है कि, हमारे ग्राम के समीप कोई भूखा नहीं सोने पावे। कोई आटा माँगकर बना लेते हैं, कोई रोटी माँगकर खा लेते हैं, कोई दूध माँगकर पी लेते हैं, और जिनकी अयाचित वृत्ति है उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार दूध, फलमूल अथवा अन्नके बने पदार्थ मैं ही दे जाता हूँ। आप इस दूध को पी लेना; मुझ को धार काढ़ना है, इसलिये अब जल्दी जा रहा हूँ, मैं फिर आकर इस पात्र को ले जाऊँगा। इतना कहकर वह बालक अकस्मात् अन्तर्द्धान हो गया। पुरीजी के चित्त में बड़ा आश्चर्य्य मालूम हुआ। उन्होंने उस दूध को पीकर पात्र धोकर रख दिया, और उस गोपकुमार की प्रतीक्षा में बैठे रहे। आधी रात्रि बैठे ही बैठे नाम करते-करते बीत गयी, परन्तु वह बालक नहीं लौटा। अब तो पुरीजी के मन में उस बालक को देखने की उत्सुकता अधिकाधिक बढ़ने लगी। उस स्थिति में शेष रात्रिके समय उन्हें कुछ तन्द्रा-सी आ गयी। उसी समय स्वप्न में देखा कि, वही बालक सामने खड़ा होकर हँसते-हँसते कह रहा है—पुरीजी! मैं बहुत दिन से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था कि पुरीजी कब आकर हमारी सेवा करेंगे। मैं तुम्हारे प्रेमवश सेवा को अङ्गीकार करके दर्शन देकर सब संसार का निस्तार करूँगा। मैं

ही गोपबालक के वेश में तुम्हें दुग्ध दे गया था। मेरा नाम श्रीगोपाल है, मैंने ही इस गोवर्द्धन को धारण किया था। मैं वज्रनाभ के द्वारा स्थापित यहाँ का अधिकारी हूँ। म्लेच्छों के भय से मेरा पुजारी मुझे पर्वत के ऊपर से उतार कर इस कुञ्ज में छिपाकर भाग गया। तब से मैं इस कुञ्ज में ही दबा हुआ पड़ा हूँ। अब तुम मुझे यहाँ से निकाल कर फिर से मेरी प्रतिष्ठा करो। मैं शीत, वर्षा व दावाग्नि से बड़ा दुःख पा रहा हूँ। तुम ग्राम के लोगों को लाकर मुझे इस कुञ्ज से लेकर पर्वत पर एक मन्दिर बनवा कर उसमें उत्तम रूप से स्थापन करो।" इतना कह कर वह बालक पुरीजी का हाथ पकड़ कर उस कुञ्ज के समीप ले गया और उन्हें वह स्थान दिखा कर झट अन्तर्द्धान हो गया। आँखें खुलने पर पुरी महाराज चारों ओर देख कर मन में विचारने लगे कि मैंने आज प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र को देखा, पर पहिचान नहीं सका हाय हाय! ऐसा कहकर प्रेमावेश में धरती पर गिर पड़े एवं थोड़ी देर तक रोदन कर अन्त में कुछ धीरज धरके प्रभु की आज्ञा पालन करने के लिये तत्पर हुए। प्रातःकाल स्नान करके पुरीजी ग्राम में जाकर सब लोगों को इकट्ठा कर कहने लगे, कि तुम्हारे ग्राम के श्रीगोवर्द्धनधारी इस कुञ्ज में हैं। कुठार फावड़ा इत्यादि ले चलो उनको बाहर निकालें। अति सघन कुञ्ज के भीतर काँटे के मारे मैं प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसा सुनकर उनके साथ सब लोग आनन्दित होकर चलने लगे और हींसों को काटकर दरवाज़ा बनाय भीतर घुसके खोदने लगे। कुछ खुदने पर उसमें से मृत्तिका व तृण से ढँकी हुई एक बहुत ही सुन्दर श्यामवर्ण मन को मोहनेवाली मूर्त्ति निकली। देखते ही सब लोग आश्चर्य्यान्वित होकर आनन्द-समुद्र में डूब गये, और मृत्तिका तृणादि आवरणों को दूरकर महाभारी ठाकुर को बड़े-बड़े बलिष्ठ लोग इकट्ठे मिलकर पर्वत के ऊपर ले गये। पुरीजी ने उसी

समय ग्रामवासियों से एक छप्पर छवाकर उसमें एक ऊँचा-सा पत्थर का सिंहासन बनवाया और उसके ऊपर पीछे की तरफ़ एक बड़ा पत्थर अवलम्बन देकर श्रीगोपालजी की उस मूर्त्ति को स्थापित किया। तदनन्दर ग्राम के ब्राह्मणगण नये-नये घड़ान में गोविन्द-कुण्ड के जल को छानकर सैकड़ों घड़ा जल लाये। तब नाना प्रकार के बाजे बजने लगे, स्त्रियाँ गीत गाने लगीं। दही, दूध, घृत, पुष्प, तुलसी, चन्दन, धूप, दीप, वस्त्र व नाना प्रकार भोग की सामग्री ग्राम-वासी चारों ओर से लाने लगे। पुरी महाराज अपने हाथ से ही अभिषेक करने लगे। पहिले श्रीठाकुरजी का श्रीअङ्गमर्द्दन कर सुगन्धित तेल लगा के खूब चिक्कना करके विधि पूर्वक पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत से स्नान कराकर फिर सौ घड़ा सुवासित सुशीतल जल से महास्नान कराके पुनराय शङ्खपूर्ण गंगाजल से स्नान समाप्त किया। तदनन्तर श्रीअंग मार्जन करके पीतवर्ण नवीन पट्टवस्त्र पहिराये, और केशर, कस्तूरी व कपूर संयुक्त सुगन्धित चन्दन सर्वाङ्ग पर लेपन कर तुलसी, पुष्प, माल्य धूप दीप तथा नैवेद्य इत्यादिक षोड़शोपचार से उनकी यथाविधि पूजा की। तब पुरी महाराज ने बड़े धूम-धाम के साथ ब्राह्मणों के द्वारा सैकड़ों प्रकार के उत्तम-उत्तम षट्रसयुक्त भोजन बनवाकर श्रीगोपालजी का अन्नकूट भोग लगाया। बहुत दिनों के भूखे रहने के कारण यद्यपि श्रीगोपालजी उन सभी पदार्थों को देखते-देखते ही खा गये, तथापि उनके हस्त-स्पर्शमात्र से ही वे सभी पदार्थ फिर ज्यों के त्यों ही हो गये। यह रहस्य पुरी महाराजने साक्षात् अनुभव करके परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए सभी व्रजवासी आबालवृद्ध-वनिता पर्य्यन्त को वह प्रसाद पवाया। इस प्रकार उस दिन के अद्भुत अन्नकूट-उत्सव को देखकर पीछे अन्य ग्रामों के व्रजवासी लोग भी बारी-बारी से श्रीगोपालजी का अन्नकूट करने लगे। श्रीमाधवेन्द्र पुरीजी

के द्वारा श्रीगोपालजी का प्रकट वृत्तान्त सुनकर मथुरा के बड़े-बड़े सेठ दर्शन को आने लगे, और वे हीरा, मुक्ता, सोना, चाँदी तथा भाँति-भाँति के वस्त्र आभूषण भक्ति के साथ भगवान् की भेंट करने लगे। एक महाधनी क्षत्रिय ने भगवान् का बड़ा विशाल मन्दिर बनवा दिया, कोई तो रसोई घर और कोई चारों ओर का घेरा बनवा दिया। अब तो दिन पर दिन ठाकुरजी का भण्डार बढ़ने लगा। एक-एक व्रजवासी ने एक-एक गाय भेंट दे दी। इससे हजारों गैया ठाकुरजी की हो गईं। पुरी महाराज बड़े ही भाव-प्रेम के साथ श्रीगोपालजी की सेवा-पूजा करने लगे। कुछ दिन बाद गौड़ देश से दो विरक्त ब्राह्मण आकर पुरी महाराज के शरणापन्न हुए। पुरीजी ने उन्हें सुयोग्य समझकर शिष्य करके श्रीगोपालजी की सेवा समर्पण की। इस प्रकार दो वर्ष तक पुरी महाराज परमानन्द में श्रीगोपालजी की सेवा करते रहे। अकस्मात् एक दिन रात्रि को स्वप्न में श्रीगोपालजी ने स्नेह परवश पुरी महाराज से कहा कि पुरीजी! बहुत दिनों तक पृथिवी के अन्दर अवस्थान करने के कारण हमारा शरीर का ताप नहीं मिटता है। यदि तुम नीलाचल से मलयगिरि-चन्दन लाकर हमारे समस्त अङ्ग में लेपन करो तो यह ताप शान्त हो जायगा। स्वप्न देखकर पुरी महाराज प्रेमाविष्ट होकर प्रभु की आज्ञा पालन करने के लिये दूसरे दिन शिष्यों को सेवा का सभी काम सोंपकर एवं श्रीगोपालजी से आज्ञा लेकर नीलाचल को चल दिये। आगे श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथजी के श्रीअङ्ग में कपूर के साथ चन्दन लगाने से श्रीगोपालजी की ताप निवृत्ति इत्यादिक वृत्तान्त बहुत विस्तार है; यहाँ तो केवल श्रीगोपालजी के प्राकट्य सम्बन्ध में यह संक्षिप्त विवरण यथा शास्त्र उल्लेख किया गया। वे ही श्रीगोपालजी भक्त-इच्छानुसार कालान्तर में श्रीगोवर्द्धन-नाथजी व पीछे श्रीनाथजी नाम से प्रसिद्ध हुए। अद्यापि राजधानी

उदयपुर के अन्तर्गत श्रीनाथद्वारा नामक नगर में श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीजी के प्राणवल्लभ श्रीगोपालजी ही श्रीनाथजी नाम करके विराजमान हैं, और वे ही श्रीनाथजी एक स्वरूप में नित्य वृन्दावन विहार सम्पादन के लिये श्रीगोविन्द कुण्ड के नैऋत्य कोण में अवस्थित गौघाट के ऊपर प्राचीन मन्दिर में विराज रहे हैं।) ॥२८॥

तथाहि श्रीदान केलि चिन्तामणौ—

यतोऽत्र निर्वर्त्यमिदं हि दानं
गिरौ स्थितस्यास्य सरोवरस्य ।
तद्दान-निर्वर्त्तनमित्यभिख्या
भवीष्यतीत्येव हि सा जगाद ॥२९॥

जिससे इस श्रीगिरिराजजी के सन्निहित श्रेष्ठ सरोवर के तट पर यह दान लेन देन समाप्त होगा, इसलिये इस स्थान का नाम दान निर्वर्त्तन ही होगा। ऐसा कहकर श्रीनान्दीमुखीजी चुप हो गईं॥२९॥

कपट-कलह-लीला यत्र तीरस्थ-कुञ्जे
क्वचिदपि कुरुतः श्रीराधिका कृष्णचन्द्रौ ।
गिरिवर-तट-देशे दान-निर्वर्त्तनाख्ये
सरसि बत कदोत्का प्रेष्ठमाप्तुं वसामः ॥३०॥

जिस कुण्ड के तीर स्थित कुञ्ज में कभी-कभी श्रीश्रीराधा-कृष्ण कपट पूर्वक यानी चातुर्य्य विस्तार करके वाद-विवादादि लीलाओं को किया करते हैं, श्रीगिरिराजजी की तरहटी में उस दाननिर्वर्त्तन नामक कुण्ड पर प्रिया-प्रियतम के प्राप्ति निमित्त परम

उत्कण्ठा के साथ निवास करेंगे; हाय ! ऐसा दिन हमारा कब होगा ? ॥३०॥

आनोर-नाम-नगरं पथिराजते श्री–
गोवर्द्धनो व्रजजनैः सुनिवेदितं तम् ।
यत्रान्नकूटमखिलं ग्रहणेच्छुरुच्चै–
रानीयतामिति मुहुः कृपयाऽवदद् भोः ॥३१॥

अहे ! उस दाननिर्वर्त्तन कुण्ड के पश्चिम दिशा में परिक्रमा के रास्ते पर जहाँ श्रीमन्नन्दादिक व्रजवासियों के द्वारा उत्तम रूप से निवेदित चर्व्य, चोष्य, लेह्य व पेय चार प्रकार का षट् रस-युक्त समस्त अन्नकूट भोग को ग्रहण करने के लिये श्रीगिरिराज जी ने कृपा करके ऊँचे स्वरसे "आनो आनो" इस प्रकार बार-म्बार कहा था; वहाँ ही आनोर नामक ग्राम विराजमान है। (उस आनोर गाँव में श्रीमान् सहू पाँड़े के घर में श्रीपाद वल्ल-भाचार्य महाप्रभुजी की बैठक है। आगे दही कटोरा व अंजनी शिला, और उसके आगे बाजनी शिला का दर्शन है।) ॥३१॥

तथाहि स्तवावल्यां व्रजविलासे—

व्रजेन्द्र-वर्य्यार्पित-भोगमुच्चै–
र्धृत्वा बृहत्काय-मघारिरुत्कः ।
वरेण राधां छलयन् विभुङ्क्ते
यत्रान्नकूटं तदहं प्रपद्ये ॥३२॥

अघारि श्रीकृष्ण अति विशाल मूर्त्ति धारण करके उत्कण्ठित होकर "मैं गोवर्द्धन पर्वत हूँ, मेरे पास तुम लोग मनोवाञ्छित वर

माँग लो," ऐसा कहकर श्रीराधिका जी को छलना करके जहाँ पर व्रजेन्द्रवर्य्य श्रीमन्नन्द महाराज के समर्पित प्रचुर अन्नकूट भोगों को भोजन किये थे; वहाँ उन अन्नकूट भोजनादि लीलाओं को अनुभव करने के लिये मैं उस अन्नकूट-स्थान का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥३२॥

तथाहि श्रीमद्वाराह महापुराणे—

अस्ति गोवर्द्धनं नाम क्षेत्रं परमदुर्लभम्।
मथुरा पश्चिमे भागे अदूराद् योजन-द्वयम् ॥३३॥
अन्नकूटं ततः प्राप्य तस्य कुर्य्यात् प्रदक्षिणम्।
न तस्य पुनरावृत्तिर्देवि ! सत्यं ब्रवीमि ते ॥३४॥

मथुरा के पश्चिम दिशा में अति दूर दो योजन पर ही श्रीगोवर्द्धन नाम का एक परम दुर्ल्लभ पुण्य क्षेत्र है। वहाँ पर अन्नकूट नामक स्थान को प्राप्त होकर उसकी प्रदक्षिणा करने से फिर संसार में नहीं आना पड़ता है। हे देवि ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥३३।३४॥

दोहाः—जहँ हरि गिरिवर रूप धरि, जेमत बहुविधि भोग।
अन्नकूट थल देखि हौं, पूर्ण मनोरथ लोग ॥

अस्ति तद्दक्षिणे कुण्डं सङ्कर्षणाख्यमिष्टदम्।
यस्योदीच्यां तटे साक्षात् सङ्कर्षणो विराजते ॥३५॥

उस आनोर ग्राम के दक्षिण दिशा में परिक्रमा के दाहिनी तरफ पास ही जीवों के मनोवाञ्छित फल को देने वाला सङ्कर्षण नामक एक कुण्ड सुशोभित है। जिस कुण्ड के उत्तर किनारे पर साक्षात् श्रीसङ्कर्षण भगवान् मन्दिर में विराज रहे हैं ॥३५॥

तथाहि श्रीमद्वाराहमहापुराणे—

तीर्थं सङ्कर्षणं नाम्ना बलभद्रेण रक्षितम्।
गोहत्या पूर्व-संलग्ना उत्तीर्णा तत्र दूरतः।
स्नानाद् गच्छति सा क्षिप्रं नाऽत्रकार्या विचारणा॥३६॥

भगवान श्रीबलभद्रजी के द्वारा सुरक्षित सङ्कर्षण कुण्ड नामक एक है। उस कुण्ड में स्नान मात्र से अतिशीघ्र ही पूर्वकृत गौहत्या रूपी पाप जो चढ़ा हुआ है, वह उतर कर दूर भगजाता है; इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥३६॥

तस्याग्नेय्यां हि पापघ्नं गौरीतीर्थं हरीच्छया।
एति यत्रान्वहं चन्द्रावली गौर्य्यर्च्चनच्छलात् ॥३७॥

उस सङ्कर्षण कुण्ड के अग्निकोण में परिक्रमा के बाईं तरफ थोड़ी दूर पर ही गौरीतीर्थ नामक एक कुण्ड सुशोभित है। जो कुण्ड समस्त पापों का नाश करता है। जहाँ पर श्रीचन्द्रावली जी नित्यप्रति श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये उत्कण्ठित होकर श्रीगौरी-पूजन छल करके ही आया करती हैं ॥३७॥

अस्ति तत् पश्चिमे नीपकुण्डं यन्मार्गसन्निधौ।
सर्व तापहरं स्पर्शात् स्वर्गापवर्गदं शुभम् ॥३८॥

उस गौरीतीर्थ के पश्चिम दिशा में परिक्रमा के पास ही नीप-कुण्ड नामक एक कुण्ड सुशोभित है। जो कुण्ड परम मङ्गलदायक एवं स्वर्ग व मोक्ष सुख को प्रदान करता है, तथा जिसके जल-स्पर्श मात्र से समस्त तापों का नाश हो जाता है। (उस कुण्ड के किनारे पर द्रोणाकार पत्र विशिष्ट बहुत से नीप अर्थात् कदम्ब के वृक्ष हैं। उन वृक्षों से दोना लेकर उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र में

श्रीकृष्ण सखाओं के साथ दही आरोगा करते थे। इसलिये उस परम पवित्र क्षेत्र का नाम गर्गसंहिता में द्रोणक्षेत्र करके प्रसिद्ध है। वहाँ पर दधिदान एवं दोना में दधिभक्षण के अनन्तर उस क्षेत्र को नमस्कार करने से मनुष्यगण निःसन्देह श्रीगोलोक धाम को प्राप्त हो जाते हैं।) ॥३८॥

तद्दक्षिणे हि गन्धर्वकुण्डं चकास्ति मुक्तिदम्।
गन्धर्वैः संस्तुतो यत्राभिषेक-समयेऽच्युतः॥३९॥

उस नीप कुण्ड के दक्षिण दिशा में परिक्रमा के बाईं तरफ थोड़ी दूर पर ही गन्धर्वकुण्ड नामक एक कुण्ड सुशोभित है। जो कुण्ड जीवों को मुक्ति प्रदान करता है। श्रीकृष्ण के अभिषेक-समय में जहाँ पर गन्धर्वों ने उनकी उत्तम रूप से स्तुति की थी ॥३९॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्रीगिरिराज तीर्थ वर्णनं
नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥

पयसा सुरभिर्गङ्गाजलैश्चेन्द्रादयो हरिम् ।
यत्राभिषेचयन्तोऽस्मै गोविन्देत्याह्वयं ददुः ॥१॥

जहाँ पर गौओं की जननी श्रीसुरभी अपनी दुग्धधारा के प्रवाह द्वारा, एवं श्रीइन्द्रादि देवतागण मन्दाकिनी गङ्गा जल के द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रका अभिषेक कर उनके लिये 'श्रीगोविन्द' ऐसा नाम प्रदान किया था ॥१॥

तथाहि श्रीमद्भागवते दशमे सप्तविंशाध्याये—

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः ।
जलैश्चाकाश-गङ्गाया ऐरावत-करोद्धृतैः ॥२॥
इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं चोदितो देव-मातृभिः ।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥३॥

श्रीकृष्ण के पास इस प्रकार प्रार्थना करके श्रीसुरभी ने अपनी दुग्ध धारा के द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक किया, और श्रीइन्द्र ने भी श्रीअदिति प्रभृति देव-जननिओं के द्वारा प्रेरित होकर देवता व ऋषियों के साथ ऐरावत हस्ति के शुण्ड-द्वारा उद्धृत आकाश गङ्गा के जल से श्रीकृष्ण का महाभिषेक सम्पादन किया, एवं उनके लिये 'श्रीगोविन्द' ऐसा नाम प्रदान किया ॥२।३॥

गिरिवरधर-कृष्णास्याभिषेकाम्बु-पूर्णं
विविध-मणि-निबद्धानेकसोपानयुक्तम् ।
सकृदपि सलिले यन्मोक्षदं स्नान-कृद्भ्यः
शतमखफलदं तत्रास्ति गोविन्दकुण्डम् ॥४॥

वहाँ पर ही श्रीगिरिवरधारी श्रीकृष्णचन्द्र के महाभिषेक जल-द्वारा परिपूर्ण एवं जिसकी सीढ़ियाँ नाना प्रकार मणियों के द्वारा बँधी हुई हैं और जो कुण्ड अपने जल में एक बार मात्र स्नान करने वालों को मोक्षगति प्रदान करते हैं; ऐसे सौ यज्ञों के फल को देने वाले श्रीगोविन्द कुण्ड विराजमान हैं। (परिक्रमा के दाहिनी तरफ श्रीगोविन्द कुण्ड के पूर्व किनारे पर श्रीगोविन्द जी का मन्दिर है, और नैऋत्य कोण में गौघाट के ऊपर मन्दिर में श्रीश्रीनाथ जी के विलक्षण दर्शन हैं, एवं दक्षिण किनारे पर श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीजी का उपवेशन-स्थान तथा श्रीपाविठ्ठलनाथ जी की बैठक है।) ॥४॥

तथाहि मथुरा खण्डे—

यत्राभिषिक्तो भगवान् मघोना यदुवैरिणा ।
गोविन्दकुण्डं तज्जातं स्नानमात्रेण मोक्षदम् ॥५॥

जहाँ पर यदुकुल के वैरी इन्द्र-कर्त्तृक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अभिषिक्त हुये थे, और इसी कारण से जिसका नाम श्रीगोविन्द कुण्ड हुआ है। जो कुण्ड अपने जल में स्नानमात्र करने वालों को मोक्ष प्रदान करता है। (उस गोविन्द कुण्ड के पास श्रीगिरिराज जी के ऊपर छड़ी टोपी और हस्ताक्षर के चिह्न हैं, और उसके थोड़ी दूर आगे ढोका दाऊजी का मन्दिर है, उसके पास खिसनी शिला व दाऊजी के हस्त चिह्न एवं दूध कटोरा है। वहाँ पर

श्रीदाऊजी महाराज सखाओं के साथ खेलते-खेलते छिप गये थे। उस मन्दिर में जाने के रास्ते पर श्रीकृष्ण की सप्तम वर्षीय अवस्था का चरण चिह्न विराजमान है।) ॥५॥

नगरी पुच्छरीत्याख्या गिरिराजस्य दक्षिणे ।
चकास्ति तदुदीच्यां वै पुच्छकुण्डं विमुक्तदम् ॥६॥

श्रीगिरिराजजी की दक्षिण दिशा में परिक्रमा की बाईं तरफ पूँछरी नामक एक छोटा-सा गाँव है। उस गाँव की उत्तर दिशा में (मयूराकृति श्रीगिरिराजजी के पुच्छ देश में) ही पुच्छकुण्ड नामक एक कुण्ड सुशोभित है, जो कुण्ड जीवों को विशेष रूप से मुक्ति प्रदान करता है। (श्रीमती नवल राणी के द्वारा उस कुण्ड के संस्कार व घाट बन्धनादि कार्य सुसम्पन्न होने से वर्त्तमान में उसका नाम नवलकुण्ड करके प्रसिद्ध हो गया है। उस कुण्ड के पूर्व दिशा में पास ही टीले के ऊपर श्रीनृसिंह जी का मन्दिर है।) ॥६॥

तत्पश्चिमेऽस्ति शोभाढ्यं ह्यप्साराकुण्डनामकम् ।
राजसूयाश्वमेधानां यत् स्नानाल्लभते फलम् ॥७॥

उस पुच्छकुण्ड की पश्चिम दिशा में परम शोभायमान अप्सराकुण्ड नामक एक कुण्ड है। जिस कुण्ड में स्नान करके मनुष्य निश्चित राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥७॥

तथाहि श्रीमद्वाराह महापुराणे—

कुण्डं चाप्सरसं नाम प्रसन्न-सलिलाशयम् ।
तत्र स्नानं तर्पणं च कृत्वाफल मवाप्नुयात् ।
राजसूयाश्वमेधानां धूतपाप्मा न संशयः ॥८॥

अतिशय स्वच्छ एवं अगाध जल से परिपूर्ण अप्सरा कुण्ड नामक एक कुण्ड सुशोभित है। जिसमें स्नान व तर्पणादिक करके मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त होकर राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है; इसमें कोई संशय नहीं है ॥८॥

तत्पश्चिमेऽस्ति लोठेति ख्यातो यदुपतेः सखा ।
योऽन्नं जलं च संत्यक्त्वाऽवस्थितो विरहातुरः ॥९॥

उस अप्सरा कुण्ड की पश्चिम दिशा में परिक्रमा के पास ही लोठा नाम से विख्यात यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र के एक सखा विराजमान हैं। जो श्रीकृष्ण विरह में व्याकुल होकर अन्न जल को परित्याग करके वहाँ बैठे हुये हैं। जिस समय श्रीकृष्ण द्वारिका गये, उस समय उन्होंने अपने साथ लोठा को भी ले जाने के लिये कहा तब लोठा जी ने कहा कि भैया! मैं तो व्रजभूमि के बाहर नहीं जाऊँगा, और जब तक तुम द्वारिका से लौट करके नहीं आओगे, तब तक मैं अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा। तब ही से लोठा जी उस पूँछरी पर भजन कर रहे हैं ॥९॥

शान्तिदं श्यामढाकाख्यमस्ति तत्पश्चिमे वनम् ।
भक्तैः श्रितं पलाशैश्च मण्डितं विविधैर्द्रुमैः ॥१०॥

उस लोठा के पश्चिम दिशा में परिक्रमा के बाईं तरफ श्यामढाक नाम करके एक शान्तिप्रद वन सुशोभित है। जहाँ पर श्रीकृष्ण के भक्तजन निवास करते हैं। श्रीश्यामसुन्दर सखाओं के साथ जिन पेड़ों के पत्रों को तोड़कर पत्तल व दोना इत्यादि बना-बना कर वन भोजनादिक लीलाएँ करते हैं; ऐसे पलाश यानी ढाक के वृक्ष समूह एवं विविध प्रकार वृक्षावली के द्वारा वह वन विभूषित है। इसलिये उस वन को श्यामढाक कहते हैं। (वहाँ

पर श्रीश्रीनाथ जी की बैठक व श्रीपाद बिठ्ठलनाथ जी की बैठक है। कुण्ड का नाम गोप-तलैया है।) ॥१०॥

राधा मुकुन्द-युगलौ सततं रमेते
दिव्या गुहा लसति राघव-पण्डितस्य ।
गौराङ्ग-सेवक गणाश्च वसन्ति यस्यां
कुञ्जै र्द्रुमैः परिवृता गिरिराज-पार्श्वे ॥११॥

परिक्रमा के दाहिनी तरफ श्रीगिरिराज जी के पास में ही बहुत से कुञ्ज एवं वृक्षावली के द्वारा परिवेष्टित श्रीपाद राघव पण्डितजी की भजनाश्रम मनोहर गुफा सुशोभित है। जिस गुफा के अन्दर श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल सरकार निरन्तर विहार करते हैं, एवं श्रीगौराङ्ग महाप्रभु जी के भक्तवृन्द जिसके आस-पास में भजन करते हुए सदैव निवास करते हैं ॥११॥

शक्रतीर्थं पथोऽसव्ये चकास्ति शक्र-निर्मितम् ।
स्वापराधक्षमार्थाय यत्रेन्द्रः प्राकरोत् स्तुतिम् ॥१२॥

उस गुफा से थोड़ी दूर आगे परिक्रमा के दाहिनी तरफ ढोका दाऊजी के नीचे शक्रतीर्थ (वर्त्तमान नाम इन्द्रकुण्ड) नामक इन्द्र के द्वारा विनिर्मित एक तीर्थ सुशोभित है। जहाँ पर देवराज इन्द्र निज अपराध क्षमा प्रार्थना करने के लिये श्रीगिरिवरधारी की स्तुति विनती की थी। (ऐसा किम्बदन्ती है, कि इन्द्र के अश्रुजल से ही वह कुण्ड परिपूर्ण हो गया था। वर्त्तमान में वह कुण्ड लुप्तप्राय अवस्था में है ॥१२॥

तथाहि आदि वाराहे—

अन्नकूटस्य सान्निध्ये तीर्थं शक्र-विनिर्मितम् ।
तस्मिन् स्नाने तर्पणे च शतक्रतुफलं लभेत् ॥१३॥

अन्नकूट स्थान के समीप में ही इन्द्र के द्वारा विनिर्मित जो तीर्थ (इन्द्रकुण्ड) विराजित है, उसमें स्नान व तर्पण करने से सौ यज्ञों का फल यानी इन्द्र पदवी का लाभ होता है ॥१३॥

सुखदं सुरभीकुण्डं नौमि शैलार्चन-स्थलम्।
यत्र स्वसखिभिर्नानाकौतुकमकरोद्धरिः ॥१४॥

जहाँ पर श्रीकृष्णचन्द्र अपने सखाओं के साथ नाना प्रकार खेलों को खेलते हैं; ऐसे श्रीगिरिराज जी के अर्चना स्थल व परम सुख को देने वाले श्रीसुरभी कुण्ड को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

कृष्णस्य पाणिपदयोः प्रतिबोधचिह्नै—
राभषितं गिरिवरेऽस्ति शिला समूहम्।
ऐरावतस्य सुरभेश्चरणाङ्कितं तान्
दृष्ट्वा प्रणम्य च नरा हरिधाम्नि यान्ति ॥१५॥

उस सुरभी कुण्ड के निकटवर्ती श्रीगिरिराज जी में श्रीकृष्ण-चन्द्र के हस्तचिह्न एवं चरण चिह्नों के द्वारा प्रत्यक्षवत् विभूषित तथा ऐरावत हस्ती व सुरभी गैया के चरण चिह्न युक्त जो शिला समूह है। उन शिलाओं के दर्शन व भक्ति पूर्वक नमस्कार करके मनुष्यगण निस्सन्देह श्री वैकुण्ठ लोक को गमन करते हैं ॥१५॥

वनं कदम्बखण्डाख्यं तदुदीच्यां हरेः प्रियम्।
यत्रास्त्यैरावतं कुण्डं दर्शनाद्भक्ति-मुक्तिदम् ॥१६॥

उस सुरभी कुण्ड के उत्तर दिशा में श्रीकृष्ण के परमप्रिय कदम्ब खण्डि नामक एक बन है, और उस बन के बीच में ही ऐरावत कुण्ड सुशोभित है। जो बन एवं कुण्ड अपने दर्शन करने वाले मनुष्यों को अधिकार अनुयायी भक्ति तथा मुक्ति सुख को प्रदान करते हैं ॥१६॥

पथोऽसव्येऽस्ति पापघ्नं रुद्रकुण्डं विमुक्तिदम्।
कृष्ण-पादाब्जयोर्ध्याने मग्नोऽभूद् यत्र शङ्करः ॥१७॥

उस ऐरावत कुण्ड के वायु कोण में परिक्रमा के दाहिनी तरफ श्रीरुद्रकुण्ड नामक एक कुण्ड (वर्त्तमान नाम हरीजी कुण्ड) सुशोभित है। जो कुण्ड समस्त पापों का नाश करके जीवों को विशेष रूप से मुक्ति प्रदान करता है। जहाँ पर श्री महादेव जी श्रीकृष्ण चरणारविन्द युगल के ध्यान में निमग्न हो गये थे ॥१७॥

रासेऽन्योन्यं कृतो यत्र शृङ्गारो युगलेन वै।
गिरिराजे गुहाग्रेऽस्ति तत्र शृङ्गार-मण्डलम् ॥१८॥

जहाँ पर श्रीरास लीला के प्रारम्भ में श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल सरकार आपस में परस्पर शृंगार किये थे, वहाँ श्रीगिरिराजजी के ऊपर श्रीनाथजी के मन्दिर में गुफा के सामने ही शृङ्गार मण्डन नामक स्थान विद्यमान है। (उस मन्दिर के उत्तर आनोर के रास्ते में नीचे उतरते दाहिने हाथ की तरफ सिंदूरी शिला है, और उसके पास ही श्रीकृष्ण के हाथ पोंछने का चिह्न है। मन्दिर से नीचे उतरते यतीपुरा की तरफ दण्डवती शिला विराजमान है, और दण्डवती शिला के आगे दाहिनी तरफ श्रीमुखारविन्द का दर्शन है एवं मुखारविन्द के आगे श्रीपाद वल्लभाचार्य महाप्रभुजी की बैठक है। श्रीमथुराधीश के मन्दिर में श्रीपाद विठ्ठलनाथजी की बैठक है, व श्रीगोकुलनाथजी के मन्दिर में श्रीपाद गोकुलनाथ जी की बैठक है। यतीपुरा गाँव में प्राचीन श्रीनाथजी की गौशाला की टूटी हुई दीवाल अद्यापि विद्यमान है।) ॥१८॥

श्रीनाथ-तृप्तिविधये गिरिराजपार्श्वे
नानाविधोपकरणैर्युतषड्रसैश्च।

यत्रान्नकूटमकरोद्यतिमोधवेन्द्रः
स्थानं हि तद् यतिपुरेति ततः प्रसिद्धम् ॥१६॥

श्रीगिरिराज जी के समीप में ही जहाँ पर श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीजी, श्रीश्रीनाथ जी की तृप्ति विधान करने के लिये षट्रस (कड़ुआ, तीता, कषाय, नोन, खट्टा व मीठा यह षट्रस) युक्त नाना प्रकार उपकरणों के द्वारा अन्नकूट महोत्सव किये थे; वह स्थान उसी कारण से अर्थात् माधवेन्द्र-यति के नाम से 'यती-पुरा' करके प्रसिद्ध हो गया है। (अद्यापि प्रति वत्सर कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन वहाँ पर महा समारोह के साथ श्रीअन्न-कूट महोत्सव सुसम्पन्न होता आ रहा है)। ॥१६॥

यः शुक्लप्रतिपत्तिथौ सुकुमुदे गोवर्द्धनं पूजयेत्
पूर्वाह्णे प्रति गोमयेन रचितं स्थूलं तथान्यत्र तम्।
दत्त्वा चैव सदक्षिणं बहुविधं भोज्यं द्विजेभ्योऽमलं
कुर्य्याच्छैल-प्रदक्षिणं स लभते श्रीकृष्णलोकं मुदा ॥२०॥

जो मनुष्य परम पुण्यतम कार्त्तिक महीना में शुक्ला प्रतिपदा तिथि के पूर्वाह्ण काल में मथुरा मण्डल-स्थित साक्षात् श्रीगोवर्द्धन पर्वत का पूजन करें, एवं अन्य स्थान में जहाँ साक्षात् श्रीगोवर्द्धन पर्वत नहीं हैं, वहाँ पर गोबर के द्वारा उनकी विशाल मूर्ति निर्माण करके श्रीगोवर्द्धन की सी उनकी पूजा करें, और पूजन के पश्चात् ब्राह्मणों को नाना प्रकार उत्कृष्ट पवित्र प्रसादों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करके श्रीगोवर्द्धन की प्रदक्षिणा करें; सो निश्चय करके परमआनन्द के साथ श्रीकृष्ण के नित्य विहार स्थल श्री गोलोक धाम को प्राप्त होवेंगे ॥२०॥

तथाहि स्कन्दपुराणे —

श्रीकृष्णदास-वर्य्योऽयं श्रीगोवर्धन-भूधरः ।
शुक्ल-प्रतिपदि प्रातः कार्त्तिकेऽच्चर्योऽत्र वैष्णवैः ॥२१॥

ये श्रीगोवर्द्धन पर्वत श्रीकृष्णदास समूह के बीच में सर्वश्रेष्ठ हैं। कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा के प्रातःकाल में (यहाँ प्रातःशब्द के पूर्वाह्न में ही तात्पर्य्य है। कारण अमावस्या युक्त-प्रतिपदा में ही पूजा होनी चाहिये। परन्तु द्वितीया युक्त-प्रतिपद में यह पूजा सर्वथा निषिद्ध है।) वैष्णवों को अवश्य ही इनकी पूजा करनी चाहिये ॥२१॥

तथाहि पद्म पुराणे—

मथुरायास्तथान्यत्र कृत्वा गोवर्द्धनंगिरिम् ।
गोमयेन महास्थूलं तत्र पूज्यो गिरिर्यथा ॥२२॥

मथुरा मण्डल से अतिरिक्त अन्य स्थान में गोबर के द्वारा महास्थूल पर्वत निर्माण करके श्रीगोवर्द्धन की जैसी पूजा होती है, तैसी ही उसमें श्रीगोवर्द्धन को पूजा करनी चाहिये ॥२२॥

तथाहि पद्म पुराणे—

मथुरायां तथा साक्षात् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।
वैष्णवं धाम संप्राप्यमोदते हरि-सन्निधौ ॥२३॥

मथुरा मण्डल में श्रीगोवर्द्धन के साक्षात् पूजन करने प्रदक्षिणा करने से ही मनुष्य वैष्णव धाम अर्थात् श्रीगोलोक धाम को प्राप्त होकर श्रीकृष्ण के समीप परमानन्द में निवास करते हैं ॥२३॥

यत्र राधा हरिं दृष्ट्वा प्रफुल्लवदनाऽभवत् ।
विलासवदनं नाम सेवास्थलं नगैर्वृतम् ॥२४॥

तत्रैव विलछू कुण्डं पथः सव्ये चकास्ति च ।
रत्नाबद्ध-चतुस्तीरं स्नानमात्रेण मुक्तिदम् ॥२५॥

यतीपुरा के डेढ़ मील उत्तर में परिक्रमा के बाईं तरफ थोड़ी दूर पर ही जहाँ पर श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन करके श्रीराधिकाजी का वदन कमल प्रफुल्लित हो गया था, वहाँ ही 'विलास वदन' नामक एक सेवास्थल एवं विलछूकुण्ड नाम करके एक कुण्ड सुशोभित है। जिस कुण्ड के चारों ओर के तट रत्नों के द्वारा बँधे हुये हैं, तथा जो कुण्ड अपने जल में केवल स्नानमात्र करने वाले जीवों को अनायास मुक्ति प्रदान करता है। [ऐसी किंवदन्ती है, कि किसी समय एक महात्मा को स्वप्न में आदेश देकर उनके द्वारा इस कुण्ड से श्रीहरिदेवजी को मूर्त्ति प्रकटित हुई थी] ॥२५॥

मार्गस्य सव्ये स्थितं, श्रीलराधिकायाः पितृव्यजायाः ।
चन्द्रावल्या ग्रामं, सद्भक्तिदं नौमिसखीस्थलाख्यम् ॥२६॥

परिक्रमा के बाईं तरफ श्रीवृषभानुनन्दिनी के चाचा की बेटी श्रीचन्द्रावलीजी के सखीस्थली नामक ग्राम विराजित है। उत्तमा भक्ति को देने वाले उस सखीस्थली (वर्त्तमान नाम सखोतरा) ग्राम को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥२६॥

मार्गस्यदक्षिणतटे मणिबद्ध तीर्थं
भक्तैः श्रितं सुखदमुद्धवकुण्डमस्ति ।
नश्यन्ति यस्य सलिलाचमनाद्विशीघ्रं
पापानि तापपटलं निखिलाशुभञ्च ॥२७॥

परिक्रमा के दाहिनी तरफ जिसके चारों ओर के घाट मणियों के द्वारा बँधे हुए हैं, और जिसके किनारे पर भक्तगण निवास

करते हैं; ऐसे श्रीउद्धव कुण्ड नामक एक सुखदायक कुण्ड सुशोभित है। जिस कुण्ड के जल आचमन करने से शीघ्र ही सर्व प्रकार के पाप एवं ताप समूह तथा यावतीय अमङ्गल विनष्ट हो जाते हैं ॥२७॥

मार्गस्य दक्षिण-दिशि प्रभुभक्तिदात्री
ख्याता चकास्तिशिवपुष्करिणीति नाम्ना ।
दग्धैव यत्र वृषभानुसुता-सखीत्वं
प्राप्ता शिवापिकिमुत व्रज-वैष्णवानाम् ॥२८॥

परिक्रमा के दक्षिण दिशा में श्रीकृष्ण-पादपद्मों में भक्ति प्रदान करने वाली शिवपुष्करिणी नामक एक विख्यात पुष्करिणी (वर्त्तमान नाम शिवोखरि) सुशोभित है। जहाँ पर भस्मीभूत होकर एक समय एक सियारी भी श्रीवृषभानुनन्दिनी के सखीभाव को प्राप्त हो गई थी, वहाँ पर व्रजवासी वैष्णवों के लिये श्रीकिशोरीकिङ्करीत्व प्राप्ति के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है। [इसके सम्बन्ध में ऐसा इतिहास है, कि एकदा एक सियारी जल पीने के लिये वहाँ आई थी। व्रजवासी बालकगण खेलते-खेलते उसे लठिया से मारने लगे। तब सियारी अपने प्राणरक्षा के लिये चारों ओर दौड़ती हुई उस शिवोखरि के किनारे पर एक बिल में घुस गई। बालकों ने भी लकड़ियाँ ला-लाकर उस बिल के दरवाजे में आँच लगादी। तब सियारी भी निरुपाय होकर उस अग्नि में जलती हुई बाहर निकल कर मरने लगी। उस समय श्रीवृषभानुनन्दिनी सखी वृन्द के साथ मध्याह्नलीला करने के लिए श्रीराधाकुण्ड को आ रही थीं। कोई सखी सियारी की दुर्दशा को देखकर श्रीस्वामिनीजी के पास उसका सब वृत्तान्त कहा। सुनते ही करुणामयी का हृदय द्रवीभूत हो गया। वे

गद्गद होकर कहने लगीं कि, अहह ! मेरे कुण्ड के पास सियारी इतना दुःख पाकर मर रही है; उसे जल्दी मेरे पास लाओ। तब सखियाँ जाकर उस सियारी को सेवायोग्य सखी देह देकर श्रीस्वामिनीजी के पास ले आईं। वह श्रीस्वामिनीजी के दर्शन करते ही उनके चरण कमलों में लोट गईं और फूट-फूट कर रोने लगी। तब श्रीस्वामिनीजी ने बड़े प्रेम से उसके ऊपर हाथ फेर-कर सान्त्वना देकर उसे अपनी सेवा में रख ली। इस प्रकार वह सियारीसखी भाव में श्रीस्वामिनीजी को सेवा-सौभाग्य को प्राप्त होकर कृतकृत्य हो गई। जय जय करुणामयी सर्वेश्वरी श्रीस्वामिनीजी की जय हो, सदा जय हो ॥२८॥

मार्गस्य तूत्तरतटे रति-भक्तिदं त-
च्छ्रीदञ्च माल्यहरणाख्य सरश्चकास्ति।
व्याप्तं सुवृक्ष निकरैः खलु यत्र गोप्यो
माला रचन्तिकुसुमैर्वर मौक्तिकैश्च ॥२९॥

परिक्रमा के बाईं तरफ शिवोखरि के उत्तर दिशा में भाव भक्ति तथा प्रेमभक्ति को देने वाले, एवं धन-सम्पत्ति को प्रदान करने वाले, सुन्दर वृक्ष समूह के द्वारा परिवेष्टित 'माल्यहरण' नामक एक सरोवर (वर्त्तमान नाम माल्यहारि कुण्ड) सुशोभित है। जहाँ पर निश्चित गोपीगण श्रीकृष्ण को पहिराने के लिये नित्य-प्रति उत्तम-उत्तम पुष्पों के तथा मुक्ता समूह के द्वारा मालाओं की रचना किया करती हैं।

(उस माल्यहारि कुण्ड के किनारे पर खेत में मुक्ता उत्पन्न होती हैं, उस मुक्ताक्षेत्र का सविशेष विवरण श्रीपादरघुनाथ दास गोस्वामी विरचित 'श्रीमुक्ताचरित' ग्रन्थ में विस्तार के साथ वर्णित है। ॥२९॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्रीगिरिराज तीर्थ वर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥

श्रीराधाकुण्डाय नमः ! श्रीकृष्णकुण्डाय नमः !!

जयति जयति राधातुल्य-राधाख्यकुण्डं
जयति जयति साक्षात्कृष्ण वत्कृष्णकुण्डम् ।
कुमुद-कमलषण्डैर्मण्डितं कुण्डयुग्मं
नयन युगल तुल्यं पश्य गोवर्द्धनस्य ॥१॥

श्रीराधिका जी के अभिन्न स्वरूप श्रीराधाकुण्ड जययुक्त हो रहे हैं, अर्थात् सर्वोत्कर्ष में विराजमान हो रहे हैं, तथा साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र के अभिन्न स्वरूप श्रीकृष्णकुण्ड भी सर्वोत्कर्ष में जययुक्त हो रहे हैं। कुमुद एवं कमलादि पुष्प समूह के द्वारा सुशोभित श्रीगिरिराज महाराज के नयन युगल सदृश श्री राधा-कुण्ड व श्रीकृष्णकुण्ड को अवलोकन कीजिये ॥ १ ॥

त्रैलोक्यस्थित तीर्थवारिनिवहैः पूर्णं सुकुण्ड द्वयं
यद्वारिस्पृशतामुदेति हृदये दास्याधिकारोत्कता ।
मध्याह्ने तु जलेस्थलेऽति विहरत्यानन्द मूर्तिद्वयं
राधामाधवयो रभिन्न वपुषी प्रेमद्रवे नौमि ते ॥२॥

त्रिभुवन-स्थित निखिल तीर्थ जलों के द्वारा जो कुण्ड युगल परिपूर्ण हैं। जिनके जल-स्पर्श मात्र से ही हृदय में श्रीकिशोरीजी

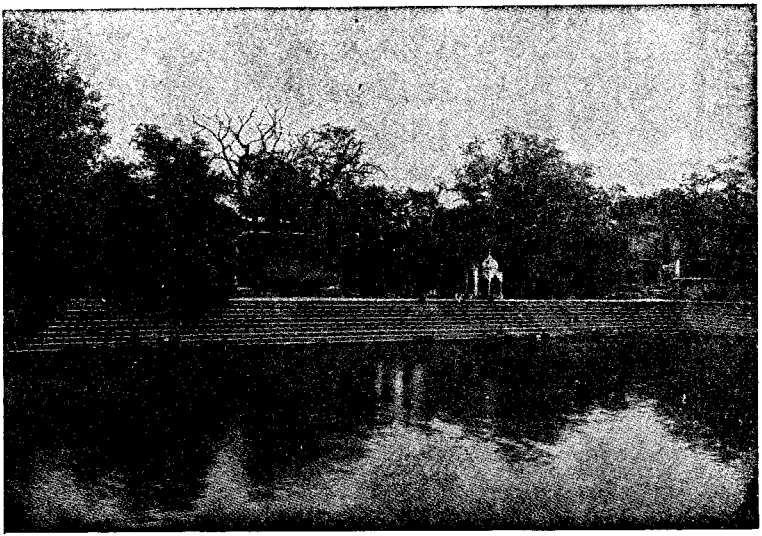

श्रीराधाकुण्ड

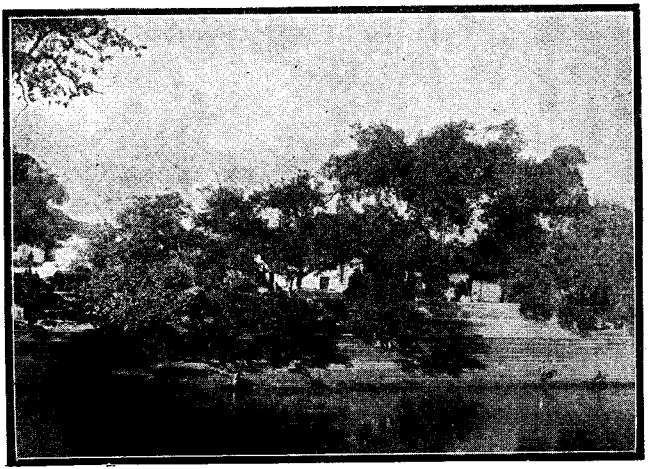

श्याम-कुण्ड

THE GITA PRESS. GORAKHPUR.

की किङ्करीत्व प्राप्ति के लिये उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाती है, और मध्याह्न के समय जिनके जल एवं स्थल में आनन्द मूर्त्ति श्रीश्री राधामाधव युगल परमानन्द में विहार किया करते है, तथा श्रीश्री राधा माधव का द्रवीभूत प्रेम ही जिनमें जल रूप से विराजमान है; ऐसे श्रीश्रीराधामाधव के अभिन्न स्वरूप श्रीराधाकुण्ड व श्रीकृष्णकुण्ड को मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥२॥

तथाहि पाद्मे कार्त्तिक माहात्म्ये—

यथा राधाप्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डंप्रियं यथा।
सर्व गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त वल्लभा ॥३॥

समस्त गोपियों के बीच में अकेली श्रीराधिका जो ही जैसे श्रीकृष्ण की अतिशय प्रिया हैं, तैसे ही श्रीराधाकुण्ड भी श्रीकृष्ण के अतिशय प्रिय है ॥ ३ ॥

इन्द्रीवरैर्लसति कैरव पुण्डरीकैः
फुल्लैर्हि कोकनद-हल्लक-हेमपद्मैः।
पूर्ण सुगन्धिसलिलैः भ्रमरत्परागैः
कुण्डद्वयं विहग-भृङ्गकुलैर्विघुष्टम् ॥४॥

जो कुण्ड इन्दीवर (नीलकमल), कैरव (कुमुद), पुण्डरीक (श्वेतकमल), कोकनद (रक्तकमल), हल्लक (रक्तसन्ध्यक) व स्वर्णकमलादि प्रफुल्लित जलजात पुष्पों के द्वारा सुशोभित है, और इन पुष्पों के परागों से परिव्याप्त सुगन्धि जल के द्वारा परिपूर्ण है; ऐसे जलचर पक्षी व भ्रमर समूह से मुखरित श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड युगल अतिशय शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४ ॥

बहुविधमणिरत्नै श्चित्रितोदारतीर्थे
सुमधुरजलपूर्णे कुण्डयुग्मे चकास्तः।
विकसित कमलान्तर्नर्त्तिते खञ्जनाल्या
प्रशमित भवतापः स्नान-वासादिभिः स्यात्॥५॥

बहु प्रकार मणि एवं रत्नों के द्वारा सुचित्रित चतुष्पार्श्वस्थ प्रशस्त घाट जिनके हैं, ऐसे सुमधुर जल के द्वारा परिपूर्ण श्रीराधा कुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड अतिशय शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। जिनके जल में कमल समूह विकसित हो रहे हैं, और उन कमलों के ऊपर खञ्जन पक्षी समूह नृत्य कर रहे हैं। इन कुण्डों में स्नान करने से और किनारे पर निवास करने से, तथा दान-पुण्य-व्रतादि करने से मनुष्यों के संसार रूपी तापों का नाश हो जाता है, अर्थात् श्रीश्रीराधाकृष्ण के चरणारविन्दों में प्रेम लक्षणा भक्ति-प्राप्ति होती है; क्योंकि बिना भक्ति के संसार तापों की आत्यन्तिक निवृत्ति होती ही नहीं॥ ५॥

राधाकुण्डेऽसिताष्टम्या मर्द्धरात्र्यांहि कार्त्तिके।
स्नात्वा वर्षान्तरेऽपत्यं चाशु भक्तिं लभन्ति वै॥६॥

कार्त्तिक के महीना में जो कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है, उस दिन अर्द्धरात्रि के समय श्रीराधाकुण्ड में स्नान करके मनुष्यगण अति शीघ्र ही श्रीकृष्ण भक्ति का लाभ करते हैं और पुत्र कामी-जन निश्चय करके एक वर्ष के बीच में ही पुत्र अथवा कन्या का लाभ करते हैं॥ ६॥

तथाहि पाद्मे कार्त्तिक माहात्म्ये—

गोवर्द्धने गिरौरम्ये राधाकुण्डं प्रियंहरेः।

कार्त्तिके बहुलाष्टम्यां तत्र स्नात्वा हरेः प्रियः ।
नरोमक्तो भवेद विप्रास्तत् स्थितस्य प्रतोषणम् ॥७॥

रमणीय श्रीगोवर्द्धन पर्वत में श्रीकृष्ण का परम प्रिय श्रीराधा कुण्ड नामक एक तीर्थ है। कार्त्तिक के महीना में कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को श्रीराधाकुण्ड में स्नान करने से मनुष्य गण श्री कृष्ण के प्रिय होते हैं। हे विप्रगण! उस कुण्ड में अवस्थित जीवों को सन्तुष्ट करने से मनुष्य भगवद्भक्त हो जाता है ॥ ७ ॥

लुप्तप्राये तु कुण्डे द्वे वीक्ष्य गौरोययोर्जले ।
स्नात्वाऽकरोत् स्तुतिंप्रेम्णा रजसातिलकादिकम् ॥८॥

श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड को काल के प्रभाव से लुप्तप्राय देखकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी ने दोनों कुण्डों के जल में स्नान करके उन कुण्डों की रज का तिलक लगाकर बड़े प्रेम से उन कुण्डों की स्तुति की थी। इसलिये उसी दिन से श्रीगौड़ेश्वर सम्प्रदाय के महात्मा लोग भी बड़े प्रेम के साथ उन कुण्डों की रज का तिलक धारण करते हैं ॥ ८ ॥

राधाकुण्ड-तटोत्तरे प्रियप्रिया-सौख्याय चेष्टान्वितां
राधाया अनुजां सदाकिलपुराऽनङ्गाभिधा मञ्जरीम् ।
नित्यानन्द-प्रियाञ्च तामति कृपामूर्तिं सुसेव्यां सतां
नौमि श्रीमतिजाह्नवांसुविदिते स्वेनाम्नि घट्टेस्थिताम् ॥९॥

श्रीराधाकुण्ड के उत्तर किनारे पर जो प्रिया-प्रियतम को सुख देने के लिये निरन्तर उपाय अनुसन्धान करती रहती हैं, और जो पहिले द्वापर युग में श्रीराधिका जी की छोटी बहिन श्री अनङ्ग-मञ्जरी नाम से प्रसिद्ध हैं। जो अतिशय करुणा की मूर्ति व

साधुओं की आराध्या देवी हैं, और जो निज नाम से सुविख्यात श्रीजाह्नवा घाट पर विराजमान हैं; ऐसे श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की प्रियतमा पत्नी श्रीमति माजाह्नवा जी को मैं बारम्बार भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

वन्दे श्रीरघुनाथदासचरणान्नित्यं समाधौस्थितान्
यः श्रीकुण्डतटोत्तरे त्रिपलकंतक्रञ्च पीत्वाऽभजत् ।
यस्याभीष्ट-लवेन कुण्डयुगलं सस्कारितं दैवतः
प्राच्यां श्यामसर स्तटेत्वखनयद् योगोपकूपाभिधम् ॥१०॥

श्रीराधाकुण्ड के उत्तर किनारे पर जो सर्वदा समाधि में अवस्थित हैं, और जो समस्त दिन में केवल तीन पल यानी बारह तोला मात्र छाछ पीकर ही भजन किये थे जिनकी इच्छा लेश मात्र के द्वारा ही दैव घटित कारण से श्रीराधाकुण्ड व श्रीकृष्ण-कुण्ड के जीर्णोद्धार एवं घाट बन्धनादि कार्य सुसम्पन्न हुए थे, तथा श्रीकृष्णकुण्ड के पूर्व किनारे पर परिक्रमा में ही 'गोपकुआँ' नामक प्रसिद्ध कुआँ को खुदवाये थे; ऐसे श्रीपाद रघुनाथ दास गोस्वामीजी को मैं भक्ति पूर्वक बारम्बार वन्दना करता हूँ। (इन कुण्डों के संस्कारादि सम्बन्ध में एक दैव घटित वृत्तान्त 'श्रीभक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ में ऐसा वर्णित है, कि क़रीब ४३० चार सौ तीस वर्ष पहिले यह श्रीराधाकुण्ड व श्रीकृष्णकुण्ड युगल लुप्तप्राय होकर 'कारी गोरी' नाम से धान के खेत हो गये थे। बीच में थोड़ा सा जल रहता था। कुण्ड के किनारे पर एक वृक्ष के नीचे श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीजी भजन किया करते थे, और आस पास कोई मीठा कुआँ न रहने के कारण उस कुण्ड के जल में ही स्नान-पानादिक समस्त कार्य किया करते थे। एक

दिन अकस्मात् श्रीदास गोस्वामीजी के मन में ऐसा सङ्कल्प हुआ, कि यह दोनों कुण्ड जल से भरपूर हो जाते, तो बड़ा अच्छा होता। पर उसमें तो कुछ अर्थ की आवश्यकता है। बस इतना विचार आते ही स्तम्भित हो गये, और अपने को बारम्बार ऐसा धिक्कार देने लगे, कि हाय! मेरे मन में यह वासना क्यों हुई। अनन्तर विविध प्रकार से अपने मन को समझा कर अतिशय सावधान होकर निर्जन में रहने लगे। परन्तु "भक्तन की भावना न होत कभी वृथा। कृष्ण ही करत ताकी पूरण सर्वथा॥" इसी कारण से ऐसा हुआ, कि एक धनवान् सेठ ने बदरिकाश्रम में जाकर बहुत से मुद्रा भेंट देकर श्रीमन्नर-नारायण भगवान् का दर्शन किया। रात्रि को स्वप्न में भक्तवत्सल भगवान् ने उस सेठ को आज्ञा दी, कि "तुम इन मुद्राओं को ले जाओ; व्रज मण्डल में श्रीगोवर्द्धन के समीप जहाँ पर आरिट गाँव है, वहाँ श्रीरघुनाथ दास नाम से एक वैष्णव-शिरोमणि भजन करते हैं। उनके आगे मेरा नाम लेकर इन मुद्राओं को दे देना। यदि वे इन मुद्राओं को ग्रहण न करें, तब उनको इस बात का याद करना, कि आपने स्नान-पान के निमित्त दोनों कुण्ड जल में परिपूर्ण होने के लिये जो मन में विचार किया था, सो इन मुद्राओं से करवा लीजियेगा।" इतना कह कर श्रीमन्नारायण ने उस सेठ को विदा किया। आँखें खुलने पर सेठजी भगवान् की परिक्रमा व दण्डवत् प्रणाम करके प्रभु की आज्ञा पालन के लिये हर्ष चित्त होकर चलते हुये आरिट गाँव में आये, और ढूँढ़ते हुये श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीजी के आगे जाकर साष्टाङ्ग दण्डवत् करके उन मुद्राओं को भेंट देकर भगवान् ने जैसी आज्ञा दी थी, सो समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। सुनकर के श्रीदास गोस्वामीजी आश्चर्यान्वित होकर स्तम्भित हो गये। कुछ देर पीछे उस सेठ को "तुम धन्यहो तुम्हारे ऊपर तो

प्रभु की अपार करुणा हो गई" ऐसी बारम्बार प्रशंसा करके कहने लगे, कि जाओ तुम शीघ्र ही दोनों कुण्डों के पङ्कोद्धार करवाओ। आज्ञा सुनते ही सेठ जी परमानन्दित होकर अतिशीघ्र ही बहुत से आदमी लगाकर बड़े यत्न के साथ दोनों कुण्डों को उत्तम रूप से खुदवाया अब श्रीराधाकुण्ड के सदृश श्रीश्यामकुण्ड चौरस चौकोना न होकर टेढ़े होनेका कारण भी सावधानी से सुनो। श्रीश्याम-कुण्ड के उत्तर किनारे पर पाँच पुराने पेड़ थे। कुण्ड खोदने वालों ने निश्चय किया, कि कल इन पेड़ों को काटकर लाइन सीधी कर देंगे। पर रात को स्वप्न में राजा युधिष्ठिरजी ने श्रीदास गोस्वामीजी से कहा कि "महाराजजी! वृक्ष रूप में हम पाँचों भैया श्रीश्याम कुण्ड के किनारे पर निवास कर रहे हैं। आप कल प्रातःकाल मानसपावन घाट में जाकर प्रत्यक्ष देखकर उन पाचों वृक्षों की रक्षा करना।" स्वप्न देखकर श्रीदास गोस्वामीजी ने प्रातःकाल वहाँ जाकर एक ही प्रकार के पाँचों वृक्ष क्रम पूर्वक देखकर उन वृक्षों को काटने से सबों को मनाकर दिया। बस इसी कारण से श्रीश्यामकुण्ड टेढ़ा हो गया। इस प्रकार दोनों कुण्डों के पङ्कोद्धार होकर निर्मल जल से परिपूर्ण होने पर श्रीदास स्वामीजी प्रिया-प्रियतम के अभिन्न स्वरूप कुण्ड युगल की अनुपम शोभा को दर्शन करके अतिशय आनन्द को प्राप्त हुए थे ॥१०॥

श्यामकुण्डोत्तरतीरेऽस्ति मानसपावनम् ।
तीर्थयत्रागरूपेण वसन्ति पञ्च पाण्डवाः ॥११॥

श्रीश्यामकुण्ड के उत्तर किनारे पर 'मानस पावन' नामक एक स्वनाम धन्य प्रसिद्ध घाट सुशोभित है। जहाँ पर वृक्ष रूप धारण करके पञ्च पाण्डव निवास कर रहे हैं। (उस घाट के समीप में

ही श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीजी की भजन कुटी है, और उसके उत्तर पास में ही श्रीपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीजी की भजन कुटी है, एवं उस भजन कुटी के पश्चिम दिशा में श्रीपाद दास गोस्वामीजी की चिता समाधि व श्रीपाद कविराज गोस्वामीजी की चिता समाधि एक ही घेरे में हैं। उस घेरे के उत्तर पास में ही श्रीपादगोपालभट्ट गोस्वामीजी की भजन कुटी है, उस भजनकुटी के पूर्व दिशा में श्रीगोविन्दजी के घेरे में श्रीगिरिराज महाराज की जिह्वा का दर्शन है।] ॥११॥

संस्थापयामास स भानुभूपः
शैलेन्द्रयागे शिबिराणि यत्र ।
तत्रैव दिव्यं वृषभानु कुण्डं
मार्गस्य सव्येऽमृतदं चकास्ति ॥१२॥

परिक्रमा के बाईं तरफ जहाँ पर श्रीगोवर्द्धन-महोत्सव के समय श्रीवृषभानु महाराज छावनीओं को स्थापन करते थे, उसी स्थान पर परमानन्द अथवा मुक्ति को देने वाले मनोरम वृषभानुकुण्ड (वर्त्तमान नाम भानुखारि) सुशोभित है ॥१२॥

उदीच्यां श्यामकुण्डस्य विस्तृत मस्ति भक्तिदम् ।
पापघ्नं ललिताकुण्डं ललितेव हरेः प्रियम् ॥१३॥

श्रीश्यामकुण्ड के उत्तर दिशा में परिक्रमा के बाईं तरफ ललिताकुण्ड नामक एक विशाल कुण्ड है। जैसे श्रीललिताजी श्रीकृष्णकी प्रिया हैं, तैसे ही वह कुण्ड भी श्रीकृष्ण का अतिशय-प्रिय है। उस कुण्ड के जल स्पर्शमात्र से समस्त पापों का नाश हो जाता है तथा हृदय में प्रेमभक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥१३॥

लसति वर तमालः श्यामकुण्डस्य तीरे
वलित निविड़पत्रो रत्न-बद्धालवालः ।
गुणगणनिधि गौरो यत्तले सन्निविष्टो
निखिल जगति तेने कुण्डयोः सन्महत्त्वम् ॥१४॥

उस श्रीश्यामकुण्ड के किनारे पर परिक्रमा के दाहिनी तरफ एक श्रेष्ठ तमाल का वृक्ष सुशोभित है। जिसमें अतिशय सघन पत्र लग रहे हैं, और रत्नों के द्वारा जिसके चारों ओर चबूतरा बँधा हुआ है। गुण समूह के समुद्र स्वरूप श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी ने जिस तमाल के नीचे बैठकर श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड का सर्वोत्कृष्ट महत्व समस्त जगत में विस्तार किया अर्थात् उन्हीं की कृपा से आज देश-देशान्तरों में कुण्ड युगल की महा महिमा प्रचारित है। [उस तमाल वृक्ष के आगे पास में ही श्रीपाद-वल्लभाचार्य महाप्रभुजी की बैठक है और श्रीपाद विठ्ठलनाथजी की बैठक है तथा श्रीपाद गोकुलनाथजी की बैठक है।] ॥१४॥

गङ्गा यत्रागमदयि हरेः पार्ष्णि घातात् प्रकाशं
कुण्डं तत्रैव हि विरचितं वज्रनाभेण रम्यम् ।
ग्रीष्मर्त्तौ वीषदपि पयसि श्यामकुण्डस्य मध्ये
दृष्ट्वा तृष्णो स्तत् कुरु सफलतां वज्रनाभाख्य कुण्डम् ॥१५॥

अहे ! जहाँ पर श्रीकृष्ण की एड़ी के आघात से पाताल से भोगवती गङ्गाजी प्रकट हुई थीं, वहाँ पर ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रपौत्र और श्रीअनिरुद्धजी के सुपुत्र श्रीवज्रनाभजी के द्वारा विरचित एक रमणीय कुण्ड है। ग्रीष्म ऋतु में जब कुण्ड में थोड़ा जल रहै, उस समय श्रीश्यामकुण्ड के बीच में उस श्रीवज्र-

नाभकुण्ड का दर्शन. करके अपने नेत्रों की सफलता सम्पादन कीजिये ॥१५॥

पितुरङ्के यथा पुत्र स्तत् सुखाय चकास्ति वै ।
तथाङ्के श्यामकुण्डस्य कुण्डं वज्रेण निर्मितम् ॥१६॥

पिता की गोद में पुत्र का बैठना जैसे पिता के सुख के निमित्त होता है, तैसे ही श्रीश्यामकुण्ड के गोद में श्रीवज्रनाभजी के द्वारा निर्मित श्रीवज्रनाभकुण्ड भी सुशोभित हो रहा है ॥१६॥

यत्सायाह्ने निधन मगमत् कृष्णशक्त्या त्वरिष्ट—
स्तस्यां रात्र्यां प्रकट मभवत् कौतुकात् कुण्डयुग्मम् ।
आली-वाचा व्रजपतिसुतोऽत्रानिनाय त्रिलोक्या—
स्तीर्थान् स्नातुं वृषहननजात् किल्वषान्मुक्तये वै ॥१७॥

अहे ! जिस दिन सायंकाल में सर्व शक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण की दुष्ट-संहारिका शक्ति के द्वारा व्रज में कंसप्रेरित अरिष्टासुर का विनाश हुआ था, उसी दिन रात्रि काल में व्रज सुन्दरियों के केलि कौतूहल से श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड युगल प्रकट हुए थे। प्रिय सखिओं के वाक्य द्वारा प्रणोदित होकर वृष रूपधारी अरिष्टासुर वध-जनित पाप से मुक्त होने के लिये स्नान करने के निमित्त श्रीव्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण यहाँ पर त्रिभुवन स्थित समस्त तीर्थों को बुलाये थे। [शास्त्रों में श्रीराधा-कुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड का उत्पत्ति वृत्तान्त ऐसा वर्णित है, कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जिस दिन अरिष्टासुर का वध करके व्रज-वासियों के अपार आनन्द को वर्द्धन किये थे, उसी दिन रात्रि-काल में श्रीकृष्ण, व्रजवनिताओं के साथ रासस्थली में रासलीला के लिये प्रार्थना करने से वे गोपियाँ मन्द-मन्द हँसती हुई कहने

लगीं कि, हे वृषभार्हन ! आप आज हम लोगों को मत छीओ। कारण आज आपने वृष की हत्या करके अपने गोविन्द नाम में कलङ्क लगा दिया तथा गौवध पाप में भी लिप्त हो गये हैं। ऐसा सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि, हे सुन्दरियों ! यह तो भयङ्कर असुर है; उस समय गोपियाँ कहने लगीं कि, हे कृष्ण ! जैसे वृत्रासुर ब्राह्मण-शरीर था, पर उसको बध करने से इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा, तैसे यह भी तो गौ का ही रूप है। गोपियों की युक्तिपूर्ण बातें सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि, हे प्रियाओं ! तो इस पाप से मैं कैसे निष्कृति पाऊँ सो बताओ ? तब गोपियाँ कहने लगीं कि, हे प्यारे ! यदि आप त्रिभुवन में जितने तीर्थ हैं, उन सब तीर्थों में नहायआओ तो पवित्र हो जाओगे। तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि, अरी ! अब हम व्रजभूमि छोड़ करके कहीं त्रिभुवन के तीर्थ करते फिरेंगे। अब हम यहाँ ही सब तीर्थों को बुलाकर उनमें स्नान करते हैं, तुम सब देखो। ऐसा कहकर श्रीभगवान ने वहीं पर बड़े जोर से एक लात मारी। लात लगते ही पाताल से भोगवती गङ्गाजी का जल निकल आया, एवं निखिल तीर्थ भी वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये। तब भगवान् ने कहा कि तुम लोग मेरे कुण्ड में आ जाओ। इस प्रकार भगवान् के बचन सुनकर समस्त तीर्थ वहाँ आकर विराजने लगे। तब श्रीकृष्ण गोपियों से कहने लगे कि अब देख लो, कुल तीर्थ यहाँ पर आगये हैं। उस समय गोपियाँ कहने लगीं कि, हे हरे ! केवल आपके कहने से ही हम सबों को विश्वास नहीं होता। तब वे समस्त तीर्थ श्रेष्ठ निज-निज मूर्त्ति धारण करके हाथ जोड़ कर अपने-अपने नाम कहते हुये परिचय देने लगे कि, मैं लवण समुद्र, मैं क्षीर समुद्र, मैं अमर दीर्घिका, मैं शोण नदी, मैं सिन्धु नदी, मैं ताम्रपर्णी, मैं पुष्करराज, मैं सरस्वती, मैं गोदावरी, मैं यमुना, मैं सरयू, मैं प्रयागराज और

मैं रेवातीर्थ हूँ इत्यादि-इत्यादि। समस्त तीर्थों के जल अलग-अलग देख लीजिये, और विश्वास कीजिये। तदनन्तर श्रीकृष्ण उन तीर्थों के जल में स्नान करके पवित्र होकर दाम्भिकता प्रकाश पूर्वक कहने लगे कि, अब सर्व तीर्थमय यह कुण्ड हमने प्रकट किया है। परन्तु तुम सबों ने भी इस पृथ्वी में जन्म भर कोई धर्म-पुण्य तो किया ही नहीं है, अतः इस कुण्ड में स्नान करके सब तीर्थों के माहात्म्य ले लेओ। ऐसा सुनकर उस समय श्रीराधिकाजो अपने सखियों से कहने लगीं कि, हे सखिओ! हमारा भी एक बहुत सुन्दर कुण्ड बनना चाहिये, इसलिये सब कोई लग पड़ो। इस प्रकार श्रीस्वामिनीजो की आज्ञा पाकर सखियों ने श्रीकृष्ण कुण्ड के पश्चिम दिशा में वृषभासुर के खुर का एक बड़ा गड्ढा देखा। उस गड्ढे में से गीली मिट्टी को अपने अपने हाथों से खोदकर गोला बना-बनाकर थोड़ी दूर फेंकते हुये दो घड़ी के बीच में हो एक मनोहर कुण्ड बना दिया। उस कमनीय कुण्ड को अवलोकन करके श्रीकृष्ण सोचने लगे एवं श्रीराधिकाजो से कहने लगे कि, हे कमल नयनि! तुम्हारा कुण्ड तो बहुत बढ़िया बन गया; परन्तु इसमें जल तो निकला ही नहीं, अतः सखियों के साथ तुम मेरे कुण्ड से तीर्थों का जल लेकर इसे अच्छी तरह भर लेओ। उस समय श्रीराधिकाजी कहने लगीं कि, नहीं नहीं कदापि नहीं, क्योंकि आपके स्नान करने से इस कुण्ड का जल भो महा गौवधपातक युक्त हो गया है। मैं अपनी दश करोड़ सखियों के साथ सौ करोड़ कलसा के द्वारा मानसी गङ्गा से पवित्र जल लाकर अभी अपने कुण्ड को भरूँगी, परन्तु आपके कुण्ड से एक बूँद भो नहीं लूँगी। इस प्रकार से मैं जगत् में अतुलनीया कीर्त्ति विस्तार करूँगी। श्रीस्वामिनीजो की ऐसी बात सुनकर एवं उनके हाई समझकर श्रीकृष्णचन्द्र ने मन्द-मन्द मुसकाय के समस्त तीर्थों को इशारा किया। उनके इशारे से ही

अकस्मात् समस्त तीर्थ दिव्यमूर्त्ति धारण करके श्रीश्यामकुण्ड से बाहर आकर भक्तिपूर्वक आँसू टपकाते हुये श्रीवृषभानुनन्दिनी के चरणार विन्दों में साष्टाङ्ग दण्डवत् करके हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे कि, हे देवि ! सर्व-शास्त्रार्थवेत्ता ब्रह्माजी आपकी महिमा नहीं जानते हैं, तथा महादेव जी एवं लक्ष्मीजी भी आपकी महिमा को नहीं जानती हैं, परन्तु एकमात्र सर्व-पुरुषार्थ-शिरोमणि आपके पसीना पोंछने वाले स्वयं श्रीकृष्ण ही जानते हैं । अहो ! जो श्रीकृष्ण आपके श्रीचरण कमलों को मनोहर महावर के द्वारा सुरञ्जित करके नित्यप्रति नूपुर पहिराते हैं, एवं आपके कृपा-कटाक्ष को प्राप्त होकर परमानन्दित होते हुये अपने को परम धन्यतम करके मानते हैं । उन्हीं की आज्ञा से ही हम सब सहसा यहाँ पर आये हैं, एवं उन्हीं के श्री चरणाघात से निर्मित इस कुण्डश्रेष्ठ में ही निवास करेंगे । अत; हे देवि ! यदि आप हम लोगों के ऊपर प्रसन्न हो जाओ, एवं कृपापूर्ण कटाक्ष से दृष्टि पात करो, तो उससे ही हम लोगों के तृष्णा रूपी तरु फलवान् हो जायेंगे । निखिल तीर्थों को ऐसी स्तुति सुनकर परम परितुष्ट होकर श्रीराधिका जी ने उन तीर्थों से कहा कि अये ! तुम लोगों को क्या इच्छा है बोलो ? तब तीर्थगण स्पष्टभाव में कहने लगे कि, हम आपके कुण्ड में जायेंगे उससे ही हम लोगों के मनोरथ सफल हो जायेंगे, बस यही हम लोगों की प्रार्थना है । तब श्रीवृषभानु नन्दिनी सखियों को पूछकर सबों की सम्मति लेकर प्राणवल्लभ के वदन कमल में नयन प्रान्त को संलग्न करके मन्द-मन्द मुसकातीं हुईं कहने लगीं कि, हे तीर्थगण ! तुम सब मेरे कुण्ड में आ जाओ । श्रीस्वामिनी जी के श्रीमुख की कृपापूर्ण आज्ञा सुनते ही तीर्थों के साथ स्थावर-जङ्गम पर्य्यन्त सब कोई सुख रूपी समुद्र में निमज्जित हो गये । इस प्रकार श्रीवृषभानु नन्दिनी की करुणा प्राप्त होकर समस्त तीर्थश्रेष्ठ श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड के बीच की

भीत को बल पूर्वक तोड़कर बड़े वेग के साथ ही अपने जल के द्वारा परिपूर्ण कर दिया। तब श्रीकृष्ण, स्वामिनी जी से कहने लगे कि, हे प्रियतमे! जगत् में मेरे कुण्ड से भी तुम्हारे इस कुण्ड की महिमा अधिक होयगी, और इस कुण्ड में नित्य प्रति हम स्नान एवं जलकेलि किया करेंगे। अधिक और क्या कहूँ कि, जैसी तुम मेरी प्रिया हो, तैसे ही तुम्हारा यह कुण्ड भी मेरा प्रिय है। ऐसा सुनकर श्रीराधिका जी भी श्रीकृष्ण से कहने लगीं कि हे प्रियतम! मैं भी सखियों के साथ नित्यप्रति यहाँ आकर तुम्हारे कुण्ड में नहाऊँगी, और जो अतिशय भक्ति पूर्वक इस कुण्ड में स्नान करेंगे, तथा कुण्ड के किनारे पर निवास करेंगे; उनके सैकड़ों विघ्न विनाश हो जायेंगे, एवं वह निश्चय करके मेरा बहुत ही प्रिय होगा। ऐसा कहकर उस रात्रि में श्रीराधाकुण्ड के तट पर श्रीकृष्ण रूप नव जलधर श्रीराधिका रूपा परमोत्कृष्ट विद्युत के द्वारा अलंकृत होकर महा रसमय हर्ष वर्षण करते हुये रासोत्सव कर त्रिलोक के बीच में अलौकिक कीर्त्ति विस्तारित किये। इस प्रकार श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड का उत्पत्ति वृत्तान्त समाप्त] ॥१७॥

दोहाः—विधिवत् राधाकुण्ड में, सकृत् करत जो स्नान।
प्रेम देत हरि ताहिका, राधा सखी-समान॥

तथाहि श्रीमद्वराह महापुराणे १६४ अध्याये—

तत्र राधा समाश्लिष्य कृष्ण मक्लिष्ट कारिणम्।
स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थमदूरतः ॥१८॥
राधाकुण्ड मितिख्यातं सर्वपापहरं शुभम्।
अरिष्ट राधाकुण्डाभ्यां स्नानात् फलमवाप्नुयात्॥१९॥

राजसूयाश्वमेधानां नात्रकार्याविचारणा।
गो नृ-ब्रह्महत्यायाः पापं क्षिप्रं विनस्यति ॥२०॥

वहाँ पर श्रीकृष्णकुण्ड के समीप में ही श्रीराधिकाजी ने अनायास सर्व कर्म सम्पादक श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके अपने नाम से एक कुण्ड निर्माण किया है। समस्त पापों को हरण करने वाले उस पवित्र तीर्थ 'श्रीराधाकुण्ड' इस नाम से विख्यात है। अरिष्ट कुण्ड अर्थात् श्रीकृष्णकुण्ड व श्रीराधाकुण्ड में स्नान करने से अति शीघ्र ही गौहत्या, नरहत्या व ब्रह्महत्या जनित महा-महापाप विनष्ट हो जाते हैं, और मनुष्यगण निःसन्देह अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं; इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥१८।१९।२०॥

तस्याल्पदूरे हि चकास्ति पूर्वे
स्थानञ्च कुण्डं लगमोहनाख्यम्।
नीपैर्वृतं यत्र चचारयन् गाः
कृष्णः प्रियायाः सह संयुतोऽभूत ॥२१॥

श्रीराधाकुण्ड के पूर्व दिशा में प्रायः एक मील दूर पर ही 'लगमोहन' नामक कदम्ब वृक्षों के द्वारा परिवेष्टित एक स्थान व कुण्ड सुशोभित है। जहाँ पर गौचारण करते-करते श्रीकृष्ण श्रीप्रियाजी के साथ परमानन्द में सम्मिलित हुये थे ॥२१॥

पश्यन्ति कुण्डद्वय-सङ्गमेवै
ये राधिका माधव-पादपीठम्।
स्नानञ्च कुर्वन्ति धनादि दानं
ते स्वेशयोर्दास्यसुखं लभन्ते ॥२२॥

जो लोग श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड के सङ्गम स्थल पर श्रीश्रीराधा माधव के सम्मिलन स्थान में रत्नवेदी पर श्रीपादपीठ यानी श्रीचरण रखने के आसन का दर्शन करें, एवं वहाँ पर दोनों कुण्ड में स्नान करके धन, धेनु, अन्न व वस्त्रादि दान करें; वे निश्चय करके निजेश्वर-निजेश्वरी युगल के दास्य सेवा रूप आनन्द को प्राप्त होवेंगे ॥२२॥

राधाकुण्डस्यनैर्ऋत्यां लीला लोकन-लोलुपः।
कुण्डेश्वर-महादेवः कृष्णादेशात् स्थितो मुदा ॥२३॥
स्नात्वा कुण्डे परिक्रम्य दृष्ट्वा तं वरदं नरः।
प्रीत्या प्रणम्य पूजित्वा भुक्ति-मुक्तिं लभेत वै ॥२४॥

श्री श्रीराधामाधव के मध्याह्न लीला-कौतुक दर्शन के लिये अतिशय लुब्धचित्त होकर श्रीकुण्डेश्वर महादेवजी श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा से आनन्द के साथ श्रीराधाकुण्ड के नैर्ऋत कोण में निरन्तर निवास कर रहे हैं। जो मनुष्य स्नान करके दोनों कुण्डों की परिक्रमा देकर उन अभीष्टदाता कुण्डेश्वर महादेवजी का प्रीति पूर्वक पूजन व प्रणाम करते हैं, वे निश्चिन्त स्वर्गादि भोग तथा मुक्तिपद को प्राप्त होते हैं ॥२३।२४॥

कल्पागै र्मणिकुट्टिमैः शिखिकुलैः शाखामृगै श्चावृतां
स्वच्छागाधजलै रसंख्य भ्रमकै श्चापूरितां विस्तृताम्।
रत्नाबद्ध चतुस्तटीं विकसिताब्जाद्यै रलैः कर्षिणीं
वन्दे तां कुसुमाकराख्य-सरसीं कृष्णेन्द्रियाह्लादिनीम् ॥२५॥

जिसके चारों ओर के तट रत्नों के द्वारा बँधे हुए हैं, और बहु विधि कल्प वृक्ष एवं मणिमय कुट्टिमों अर्थात् बुर्जों के

द्वारा सुशोभित हैं, तथा जहाँ पर मयूर व बन्दरों के झुण्ड क्रीड़ा किया करते हैं। जो स्वच्छ एवं अगाध जल तथा असंख्य मत्स्यों के द्वारा परिपूरित है, और जो अपने में विकसित विविध प्रकार कमल-कुमुदादि जलजात कुसुमों की सुगन्ध द्वारा भ्रमरों का आकर्षण कर रहा है। ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र की सर्वेन्द्रियों को आनन्द देने वाला अति विस्तृत कुसुमाकर नामक प्रसिद्ध कुसुम सरोवर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२५॥

गिरिराजस्य तुल्यं तत् कुसुमाख्य सरोवरम् ।
यस्मिन् स्नानैक मात्राद्धि गोपी बभूव नारदः ॥२६॥
राजते मन्दिरे तस्य नैर्ऋत्यां श्रीमदुद्धवः ।
वदन्ति मुनयो गुल्मलता रूपेण मस्थितः ॥२७॥
मासैकं श्रावयित्वासौ तत्र भागवतं पुरा ।
कृष्णं सन्दर्शयामास महिषीभ्यो नृपाय च ॥२८॥

वह प्रसिद्ध कुसुम सरोवर श्रीगिरिराज महाराज के मुखारविन्द सदृश है। जिसमें केवल स्नान मात्र से ही श्रीनारदजी गोपी स्वरूप को प्राप्त हो गये थे। उस सरोवर के नैर्ऋत कोणस्थित मन्दिर में श्रीयुक्त उद्धवजी महाराज विराजमान हैं। मुनिगण ऐसा कहते हैं, कि वहाँ पर श्रीउद्धवजी गुल्मलता रूप धारण करके निरन्तर निवास कर रहे हैं, और वहाँ ही द्वापर युग के अन्त में श्रीभगवान् के परम प्रियतम श्रीउद्धवजी एक महीना तक श्रीमद्भागवतजी की कथा सुनाकर श्रीवज्रनाभजी तथा द्वारका स्थित महिषी वर्ग को श्रीकृष्णचन्द्र के साक्षात् दर्शन कराये थे। [कुसुम सरोवर पर द्वारका महिषियों का श्रीकृष्ण साक्षात्कार वृत्तान्त पुराणों में ऐसा वर्णित है, कि श्रीकृष्ण अन्तर्द्धान के पीछे द्वारका स्थित महिषियाँ श्रीकृष्ण विरह में

व्याकुल होकर मथुरा में आकर श्रीयमुनाजी को आनन्दित देख कर मत्सरता परवश कहने लगीं, कि हे कालिन्दि! जैसे हम श्रीकृष्ण की प्रिया हैं तैसे तुम भी तो हो; परन्तु हम विरहार्त्ता हैं, और तुम नहीं हो, इसका क्या कारण है बताओ? ऐसा सुनकर हँसती हुई श्रीकालिन्दी करुणा करके कहने लगीं, कि आत्माराम श्रीकृष्णचन्द्र की आत्मा तो श्रीराधिकाजी ही हैं, उन्हीं के दासी भाव के प्रभाव से हमको विरह स्पर्श नहीं करता है। तुम सबों का भी तो उनके साथ सर्वथा वियोग नहीं है, परन्तु व्याकुलता परवश तुम सब ऐसा नहीं जानती हो। ऐसे ही पहले श्रीअक्रूरजी श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने से गोपियों को महाविरह हुआ, पर श्रीउद्धवजी के द्वारा उसका समाधान हुआ। यदि उन उद्धवजी के साथ तुम सबों का किसी प्रकार से मिलन हो जाय, तो निःसन्देह अपने प्रियतम के साथ नित्य विहार को प्राप्त हो जाओगी। तब श्रीकृष्ण पत्नीगण कहने लगीं, कि हे सखि! तुम धन्य हो, कारण कि प्रियतम के साथ तुम्हारा विच्छेद नहीं है। जिनसे तुम्हारी मनोरथ सिद्धि है हम भी उनकी दासी हो जायेंगी, और श्रीउद्धवजी के दर्शन से ही अवश्य हम सबों के सर्वार्थ सिद्ध हो जायँगे। अब श्रीउद्धवजी के दर्शन कैसे होयँ वही उपाय तुम बताओ। तब श्रीकालिन्दी कहने लगीं, कि श्रीउद्धवजी गोपियों की चरणरज कामना से गुल्मलता रूप में श्रीगोवर्द्धन के समीप में ही निवास कर रहे हैं। इससे वहाँ जाकर कुसुम सरोवर के आस-पास में वज्रनाभ के द्वारा भक्त-वृन्द को बुलाकर वीणा, वेणु, झाँझ व मृदङ्गादि वाद्य बजाकर संकीर्त्तन उत्सव आरम्भ करो। उस महोत्सव में निश्चय श्रीउद्धवजी के दर्शन हो जायँगे। ऐसा सुनकर महिषीगण प्रसन्न हो श्रीकालिन्दी को नमस्कार करके श्रीवज्रनाभ व श्रीपरीक्षित् के पास जाकर सब वृत्तान्त कहने लगीं। सुनते ही वे लोग

बड़ी प्रसन्नता के साथ मथुरावासी ब्राह्मणों को साथ लेकर श्रीगोवर्द्धन में आकर शीघ्र ही सखीस्थली के पास कुसुम वन में श्रीकृष्ण संकीर्त्तन करने लगे। श्रीकृष्ण के विहार स्थल में आने पर संकीर्त्तन के द्वारा श्रीकृष्ण को प्रत्यक्षवत् प्रतीत होने से सब तन्मय हो गये। तब सब के सामने गुल्मलताओं के बीच से पीताम्बर व गुञ्जामालाधारी श्यामवर्ण श्रीउद्धवजी निकले, और "गोपीजन वल्लभ गोपीजन वल्लभ" ऐसा बारम्बार कहते हुए संकीर्त्तन के पास आगये। उनके आगमन से कीर्त्तनोत्सव भी खूब जोर से शोभा देने लगा। जैसे चन्द्रमा के उदय होने से स्फटिक मणि को भीत में अद्भुत शोभा होती है; तैसे ही श्रीउद्धवजी के आने से वहाँ के सब कोई सुख समुद्र में निमग्न होकर देह-गेहानुसन्धान भूल गये। थोड़ी देर पीछे चैतन्यता को प्राप्त हो श्रीकृष्ण सदृश रूप श्रीउद्धवजी को देखकर सबने अति आदर से पूजन किया। तदनन्तर श्रीउद्धवजी भी संकीर्त्तन परायण उन सबों का यथायोग्य सत्कार व आलिङ्गनादि करके श्रीपरीक्षित्जी से कहने लगे, कि हे राजन्! तुम धन्य हो, श्रीकृष्ण भक्ति से परिपूर्ण हो, जिससे श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन में तुम्हारा चित्त सर्वदा डूब रहा है। श्रीकृष्ण प्रियाओं में तथा वज्रनाभ में बड़े सौभाग्य से तुम्हारी प्रीति हुई है। श्रीकृष्ण रक्षित हे तात! तुम्हारे लिये ऐसा होना उचित ही है, और द्वारका वासिनी ये महिषीगण भी परमधन्या हैं। प्रभु जिन सबों को व्रज में वास कराने के लिये अर्जुन को आज्ञा कर गये थे। सोलह कला परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्र के एक एक कला ही सहस्र-सहस्र भाग में विभक्त होकर ये सब प्रिया रूप में विराजमान हैं। इस प्रकार शरणागत पालक श्रीवज्र का भी श्रीकृष्ण के दक्षिण चरण में स्थान है। श्रीकृष्ण की योगमाया के द्वारा ये सब अपने-अपने स्वरूप को भूलकर दुःखी हो रही हैं। श्रीकृष्ण

के प्रकाश बिना अपना स्वरूप ज्ञान नहीं हो सकता है। वैवस्वत मन्वन्तरस्थित अष्टाविंश चतुर्युगीय द्वापर युग के शेष भाग में जब भगवान् स्वयं अपनी माया को हटा लेंगे, तभी उनके दर्शन होंगे। परन्तु उस समय के आने में तो बहुत विलम्ब है, अतः दूसरा उपाय सुनो। उपरोक्त समय के अतिरिक्त अन्य समय श्रीमद्भागवत से ही उनका प्रकाश होता है। श्रीभगवद्भक्तों के द्वारा जहाँ जब श्रीमद्भागवत महापुराण का श्रवण अथवा कीर्त्तन होता है, वहाँ निश्चय करके उस समय भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् रूप से विराजमान रहते हैं। जहाँ श्री मद्भागवत के एक श्लोक या आधे श्लोक का भी पाठ होता है, वहाँ पर श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा गोपिकाओं के साथ विद्यमान रहते हैं। इस पवित्र भारतवर्ष में मनुष्य का जन्म पाकर भी जिन लोगों ने पाप के अधीन होकर श्रीमद्भागवत जी की कथा नहीं सुनी, उन्होंने मानों अपने हाथों से ही अपनी हत्या कर ली। जिन महा भाग्यवानों ने प्रतिदिन श्री मद्भागवत रस का आस्वादन किया है, उन्होंने अपने पिता, माता व पत्नी इन तीनों कुलों का उत्तम रूप से उद्धार कर दिया। श्रीमद्भागवत के स्वाध्याय एवं श्रवण से ब्राह्मणों को विद्या का प्रकाश यानी दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है, तथा क्षत्रियगण शत्रुओं पर विजय प्राप्त होते हैं, एवं वैश्य लोगों को धन सम्पत्ति प्राप्त होती है, और शूद्रगण स्वस्थ व नीरोग बने रहते हैं। स्त्रियों तथा अंत्यज आदि अन्यान्य लोगों की भी यावतीय इच्छा श्री मद्भागवत से ही परिपूर्त्ति होती है; अतः भाग्यवान् पुरुषों के बीच में ऐसा कौन है ? कि जो श्रीमद्भागवत का नित्य ही सेवन न करेगा। वह जन्म पर्य्यन्त साधन करते-करते जब मनुष्य पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है, तब ही उसे श्रीमद्भागवत जी की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत से ही श्रीभगवान् का प्रकाश होता

है, जिससे भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है। पूर्वकाल में श्री सांख्यायन ऋषि की कृपासे प्राप्त श्री मद्भागवत पहिले श्री बृहस्पति जी ने मुझको दिया। उनसे प्राप्त होकर मैं अत्यन्त आनन्द से उनको नमस्कार करके वैष्णवों की रीति से एक महीना तक श्रीमद्भागवत का आस्वदन किया। इसी से मैं श्रीकृष्ण का प्रियतम सखा हो सका हूँ। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने कृपा करके मुझको ब्रज में विरहातुरा गोपिकाओं के पास भेजा। तब मेरे मुख से श्रीभगवान् का संवाद सुनकर उन गोपिकाओं की विरह विधुरता कुछ शान्ति हुई। पहिले भगवान् ने दृढ़ करके मुझे समझा दिया था कि तुम बदरिकाश्रम से आकर ब्रज में ही रहना। इसलिये मैं अपनी इच्छा से ही सदा इस नारदकुण्ड के पास रहता हूँ। भक्तों को श्रीमद्भागवत से ही श्रीकृष्ण का प्रकाश होता है। अतएव इन सबों के लिये मैं श्रीमद्भागवत ही कहूँगा। इस कार्य में तुम्हारी सहायता होनी चाहिये। ऐसा सुनकर श्रीपरीक्षित् महाराज श्रीउद्धवजी को प्रणाम करके कहने लगे कि, हे श्रीहरिदास! आप श्रीमद्भागवतजी की कथा कहिये, मैं सब तरह से सहायता करता रहूँगा। तब प्रसन्न होकर श्रीउद्धवजी बोले कि श्रीकृष्ण के अन्तर्द्धान होने के कारण बलवान् कलि शुभ कार्य में बहुत विघ्न करेगा। इस कारण तुम कलि को दमन करने के लिये दिग्विजय में जाओ, और मैं एक महीना के लिये तुम्हारी सहायता से श्रीमद्भागवत आस्वादन कराकर इन सबों को प्रभु के नित्य धाम प्राप्त कराऊँगा। ऐसा सुनकर श्रीपरीक्षित् महाराज व्याकुल होकर अपना अभिप्राय श्रीउद्धवजी से कहने लगे, कि हे तात! आपकी आज्ञा से मैं कलि निग्रह तो करूँगा, परन्तु मेरे लिये श्रीमद्भागवतजी की प्राप्ति कैसे होगी। मैं आपके चरण कमल में आश्रित हूँ। ऐसा सुनकर तब श्रीउद्धवजी कहने लगे, कि हे राजन्! तुम चिन्ता मत करो, तुम्हारे लिये श्रीशुक-

देवजी ही श्रीमद्भागवत सुनावेंगे, उससे तुम श्रीकृष्ण के नित्य धाम को प्राप्त हो जाओगे। उसके पीछे पृथ्वी में श्रीमद्भागवत का प्रचार होगा। अतः हे राजन! तुम निश्चिन्त होकर कलि निग्रह के लिये चले जाओ। तब श्रीपरीक्षित् महाराज श्रीउद्धवजी को परिक्रमा व दण्डवत् प्रणाम करके दिग्विजय के लिये चले गये, और श्रीवज्रनाभजी भी निज राज्य में प्रतिबाहु को राज्य-भार समर्पण कर वहाँ ही माताओं के साथ श्रीमद्-भागवतजी की कथा सुनने के लिये रह गये। अनन्तर श्री-गोवर्द्धन के समीप में श्री उद्धवजी के द्वारा एक महीना श्रीमद्भा-गवतजी का आस्वादन होने लगा। कथा होते होते ही वहाँ पर चारों ओर से श्री भगवान् की लीला झलकने लगी, तथा साक्षात् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उस समय सबों ने अपने को लीला के बीच में ही देखा। श्री वज्रनाभजी श्रीकृष्ण के दक्षिण चरण में अपना स्थान देख कर अपने को श्रीकृष्ण विरह से मुक्त मानने लगे, तथा उनके मातृवर्ग भी अपने को श्रीकृष्णचन्द्र की कला स्थानीया देखकर विस्मित हो अपने प्रियतम की विरह व्याधि से विमुक्त होकर नित्य धाम को चली गईं। वहाँ पर और-और भी जो-जो थे, वे भी सब नित्य लीला में चले गये, अर्थात् व्यवहार जगत् से तत्क्षणात् अन्तर्हित होकर श्री गोवर्द्धन के निकुञ्ज व्रज भूमि व श्री वृन्दावनादि में नित्य श्रीकृष्णचन्द्र के साथ परमानन्द में विहार करने लगे। इस प्रकार कुसुम सरोवर पर श्रीद्वारका महिषियों का श्रीकृष्ण साक्षात्कार वृत्तान्त समाप्त।]॥२६।२७।२८॥

श्रीबृहस्पति-शिष्याय सर्वज्ञायोद्धव प्रभो।
कृष्ण प्रियार्त्तिनाशाय हरिदासाय ते नमः ॥२९॥

हे श्री उद्धवजी महाराज! आप श्री बृहस्पतिजी के शिष्य हैं, अतएव सर्वज्ञ हैं, और श्रीकृष्ण प्रियाओं के श्रीकृष्ण-विरह

जनित आर्त्ति को नाश करने वाले हैं, एवं शास्त्रों में श्रीहरिदास नाम से विख्यात हैं; ऐसे हे प्रभो ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥ २९ ॥

दत्तोऽसि कृष्ण विरहातुर गोपिकानां
कृष्णानुभाव कथया महिषी गणानाम् ।
दुःखात्यये त्वमिह तूद्धव दुःखजाला—
त्त्रायस्व दर्शयच मां कृपयाशु कृष्णम् ॥३०॥

हे श्री उद्धवजी महाराज ! आप श्रीकृष्णचन्द्र की रूप, गुण, माधुर्य लीला, महिमा व अनुरागमयी कथा सुना कर श्रीकृष्ण-विरह विकला व्रज गोपिकाओं के तथा श्री द्वारका-महिषी वर्गों के विरह दुःख निवारण विषय में परम समर्थ हैं । इसलिये आपके चरण कमलों में मेरा भी यह सविनय निवेदन है, कि आप कृपा करके मुझे समस्त दुःख जालों से परित्राण कीजिये, और अति शीघ्र ही श्री गिरिराजजी को तरहटी में श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमलों का साक्षात् दर्शन करा दीजिये ॥ ३० ॥

कुसुमाख्य सरस्तीरे भात्यशोक लता सदा ।
निशीथे तत्तले राधा-कृष्णयो र्दर्शनं भवेत् ॥३१॥
अशोक मालिनी त्याख्याऽस्त्यशोक बन देवता ।
कृष्णलीला-रहस्यज्ञा तत्रैवा भीष्ट दायिनी ॥३२॥

उस कुसुम सरोवर के किनारे पर एक अशोक लता की झाड़ी सदैव शोभा प्राप्त हो रही है । उस लता के नीचे अर्द्धरात्रि के समय श्री श्री राधा कृष्ण के दर्शन होते हैं । वहाँ पर ही श्री अशोक मालिनी नाम करके अशोक बन की अधिष्ठात्री एक देवी हैं । जो श्रीकृष्ण के समस्त लीला रहस्यों को जानने वाली हैं,

तथा सेवकों के सर्व प्रकार मनोवाञ्छित फलों को प्रदान करने वाली हैं। [जहाँ पर वर्त्तमान समय में श्री विहारीजी का मन्दिर है, वहाँ ही वह अशोकलता व देवी विराजमान थीं, परन्तु जीवों के दुर्भाग्य से इस समय उनके दर्शन सर्व साधारणों के लिये नहीं मिलते हैं ॥ ३२ ॥

पश्य भ्रातस्त्विह तृण लता गुल्म रूपेण नित्यं
संतिष्ठन्त्यच्युत प्रियजना नन्यभक्तो द्धवाद्याः ।
भक्तै रुक्तं कुसुम चयना यालिभि श्चैत्य राधा
प्रेयःसार्द्धं मिलति सरसी पार्श्वगेऽस्मिन् वनान्ते ॥३३॥

हे भ्रात ! देखो यहाँ पर श्रीकृष्ण के प्रियजन ऐकान्तिक भक्त श्री मदुद्धवादि तृण, लता व गुल्म रूप धारण करके नित्य निवास करते हैं। भक्तगण ऐसा कहते हैं, कि श्री वृषभानु नन्दिनी अपनी सखियों के साथ यहाँ पर नित्य प्रति पुष्प चयन करने के लिये पधारती हैं, और इस कुसुम सरोवर के पार्श्ववर्त्ती वनों में निज प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ परमानन्द में मिलती हैं ॥ ३३ ॥

दोहा—सखे ! देखिये कुसुम बन, गोपिन-पद रज आस ।
गुल्म लता तनु धरि जहाँ, उद्धव करत निवास ॥
दोहा—तरु तनु धरि मुनि-भक्तगण, गिरितट करत निवास ।

हरित पेड़ जड़ से कटें, तिन सुख सम्पद नाश ॥

कुञ्जै र्वृन्दकुलै र्वृतश्च सुधया पूर्णं सुपद्मान्वितं
मण्याबद्ध चतुस्तटं त्वघहरं श्लाघ्यंहि सर्वेष्टदम् ।
वन्दे नारद कुण्ड मेव जयति श्री नारदो रागतो
यत्तीरे ह्यचिरं भजन् मधुरिपोः सन्दर्शनं प्रापितः॥३४॥

परिक्रमा के बाईं तरफ थोड़ी दूर में ही श्री नारदकुण्ड सुशोभित है। जिसके किनारे पर वैष्णव शिरोमणि श्रीपाद नारदजी सर्वोत्कर्ष में जयधुक्त हो रहे हैं, और जिसके चारों ओर के तट मणियों के द्वारा बँधे हुये हैं, तथा बहुत से कुञ्ज एवं वृक्ष समूह के द्वारा परिवेष्टित हैं। जिसमें अमृत-सदृश जल भरा हुआ है, तथा उस जल में उत्तम-उत्तम कमल खिल रहे हैं। जो जीवों के निखिल पातकों का नाश तथा सर्व प्रकार अभिलषित वस्तु प्रदान करते हैं। जहाँ पर श्रीमन्नारदजी राग मार्गानुसार भजन करके अल्पदिन में ही मधुरिपु श्रीकृष्णचन्द्र के सम्यक् प्रकार दर्शन को प्राप्त हुये थे; ऐसे परम प्रशंसा के योग्य श्रीनारद कुण्ड को मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ। [श्रीनारदजी की श्रीकृष्ण साक्षात्कार वृत्तान्त " श्रीवृन्दावन लीलामृत " ग्रन्थ में ऐसा वर्णन है कि, एक दिन श्रीनारदजी श्रीमहादेवजी के पास जाकर अतिशय विनीत बचन से निवेदन करने लगे कि, हे देव ! श्रीकृष्णचन्द्र निशान्त काल से लेकर नक्तकाल पर्यन्त जिस काल में जो-जो लीला करते हैं, प्रभुकी नित्य प्रति होने वाली उन लीलाओं को बिना जाने किस प्रकार से मानसिक सेवा करी जाय। अतः उन लीलाओं को यथावत् आपके श्रीमुखारविन्द से सुनने की अभिलाषा है। ऐसा सुन कर श्रीमहादेवजी तब श्रीनारदजी से कहने लगे कि, हे नारद ! श्रीकृष्णचन्द्र की दैनन्दिन यानी अष्टकालीन लीलाओं को मैं सविस्तार नहीं जानता हूँ, उन लीलाओं को तो श्रीवृन्दादेवी ही जानती हैं। वे ही तुम्हें कह सकती हैं, उन्हीं के पास जाओ। वे यहाँ से अनति दूर केशीतीर्थ के समीप में ही अपने को श्रीकृष्ण-दासी मानकर सदा सखियों के साथ रहती हैं। ऐसा सुन कर श्रीनारदजी श्रीमहादेवजी की परिक्रमा एवं दण्डवत् करके श्रीवृन्दाजी के आश्रम में गये। मुनिवर को देख कर श्रीवृन्दाजी ने प्रणाम करके बैठने को आसन देकर

आगमन का कारण पूछने लगीं। तब श्रीनारदजी कहने लगे कि, हे देवि ! इस वृन्दावन वन में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराधिकादि गोपिकाओं के साथ नित्य प्रति रास-विलासादि जो-जो लीला किया करते हैं, उन लीलाओं को सुनने के लिये मेरी अत्यन्त लालसा हो रही है। आप कृपा करके उन समस्त लीलाओं का सविस्तार वर्णन कीजिये। ऐसा सुन कर श्रीवृन्दाजी कहने लगीं कि, ये सब लीला ब्रह्मा, शङ्कर व शेषादि देवों के अगम्य एवं अति गोपनीय होने पर भी मैं आपके लिये कहती हूँ। कारण आप श्रीकृष्ण के भक्त-चूड़ामणि हो, परन्तु इन लीलाओं को आप सर्वत्र नहीं कहना।

कुञ्जाद्गोष्ठं निशान्ते प्रविशति कुरुते दोहनान्नाशनाद्यां।
प्रातः सायञ्च लीलां विहरति सखिभिःसङ्गवे चारयन् गाः॥
मध्याह्ने चाथ नक्तं विलसति विपिने राधयाद्धा पराह्णे।
गोष्ठं याति प्रदोषे रमयति सुहृदो यःस कृष्णोऽवतान्नः॥

श्रीगोविन्द लीलामृते।

जो निशान्त काल में कुञ्ज से गोष्ठ (नन्दभवन) को गमन करते हैं, और प्रातःकाल तथा सायंकाल में गोदोहन व भोजनादि लीला करते हैं। जो पूर्वाह्न के समय गौओं को चराते हुए सखाओं के साथ विहार करते हैं, एवं मध्याह्न काल तथा रात्रि काल में श्रीराधिकाजी के साथ वन में साक्षात् विहार करते हैं। जो अपराह्न काल में गोष्ठ को गमन करते हैं, एवं प्रदोष काल में सुहृद वर्गों के साथ क्रीड़ा किया करते हैं; ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र हम लोगों की रक्षा करें। हे मुनिवर ! इस प्रकार सूत्ररूप में श्रीकृष्ण की नित्यलीला का दिग्दर्शन रूप से मैंने आपके लिये कहा; जिसके श्रवण करने से महापापी जन भी पापों से मुक्त हो जाते

हैं, तथा भक्तजन श्रीकृष्ण-पाद-पद्मों को साक्षात् दर्शन लाभ करते हैं। तब श्रीनारदजी कहने लगे कि, हे देवि! आपके अनुग्रह से आज मैं कृतकृत्य हो गया हूँ; जिससे आपने श्रीकृष्ण-चन्द्र की दैनन्दिन लीलाएँ आज मुझे सुनाईं। पर यह और बताओ कि, इन लीलाओं का दर्शन कैसे हो? ऐसा सुनकर श्रीवृन्दाजी कहने लगीं कि, यदि कोई भाग्यवान् रागमार्ग में अवस्थित होते हुए गोपी-प्रेम के अनुगत होकर वेदधर्म, लोकधर्म, देहधर्म, कर्म, लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख, मर्म, दुस्त्यज आर्यपथ, निज परिजन, स्वजन के किये जेते ताड़न भर्त्सन इत्यादि सर्व धर्म परित्याग करके केवल श्रीकृष्ण को ही सुख देने के लिये दृढ़ अनुराग के साथ भजन करें, और प्रबल उत्कंठित होकर श्री श्रीराधाकृष्ण के साक्षात् दर्शन व सेवा प्राप्ति के लिये दिवारात्रि प्रार्थना करें, तो साध्य वस्तु प्रेम सेवा की भावना करते-करते शीघ्र ही दर्शन-योग्य देह लाभ कर सपरिकर श्री श्रीराधाकृष्ण की उन लीलाओं का सन्दर्शन कर सकते हैं। ऐसा सुनते ही श्रीनारदजी परमानन्दित होकर श्रीवृन्दादेवी की परिक्रमा व दण्डवत् प्रणाम करने से श्रीवृन्दाजी भी उनका सादर नमस्कारादि करने लगीं। तब श्रीनारदजी उनसे आज्ञा लेकर मधुर-मधुर वीणा बजाते हुए श्रीवृन्दावन की परिक्रमा कर सब लीला स्थलियों को देखते-देखते श्रीगिरिराजजी में आये, और श्रीकृष्ण लीलास्थल कमनीय कुण्ड को देखकर मन में विचारने लगे कि, श्रीहरिदासवर्य के पादपद्म आश्रय किये बिना साधन करने पर भी शीघ्र अभीष्ट सिद्धि नहीं होती। श्रीव्रज-मण्डल के बीच में यह श्रीगोवर्द्धन हो व्रज-मुकुट मणि सदृश सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः यहाँ ही इस निर्जन कुण्ड के किनारे पर निवास करके मैं अपने अभीष्ट का साधन करूँगा। ऐसा निश्चय करके श्रीनारदजी वहाँ पर बैठकर श्रीमहादेवजी तथा श्रीवृन्दाजी के

आदेशानुसार नित्यलीला दर्शनोत्कण्ठा से व्याकुल होकर उच्च-स्वर से संकीर्त्तन करके लगे। यथाः—

नन्दनन्दन भक्तचन्दन कंसकन्दन कृष्ण भो—
श्चारुशीलक दिव्यलीलक दुष्टकीलक हे प्रभो ॥
एहि लोचन वर्त्म शोचन नाशि रोचन मे सकृद्।
वाञ्छितं मम पूरयोत्तम केलि विभ्रम सौख्यकृत् ॥

श्रीगौराङ्गचम्पू काव्ये द्वितीय आस्वादे।

हे श्रीनन्दनन्दन! आप भक्तों के लिये चन्दन तुल्य आनन्द-दायक हैं। हे कंस निसूदन! हे कृष्ण! आप मनोहर स्वभाव विशिष्ट, दिव्य लीला विहारी, एवं दुष्टों के दमन करने वाले हैं। आपकी श्रीअंगकान्ति दर्शन करने वाले भक्तों के शोक को नाश करने वाली है। आप उत्कृष्ट लीला-विलास परायण व भक्तों के सुख विधान करने वाले हैं; ऐसे हे प्रभो! आप जल्दी दर्शन दीजिये और मेरा मनोभीष्ट परिपूर्ण कीजिये। ऐसा कीर्त्तन करते-करते थोड़े दिन में ही श्रीनारदजी का साधन सिद्ध हो गया, और सेवा योग्य देह पाकर सपरिकर श्री श्रीराधाकृष्ण के साक्षात् दर्शन लाभ किये। इस प्रकार श्रीनारद कुण्ड पर श्री-मन्नारदजी का भजन तथा श्रीभगवद्दर्शन सम्बन्धीय संक्षिप्त वृत्तान्त समाप्त।] ॥३४॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्रीगिरिराज-तीर्थ वर्णनं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥

यत्रागत्यैव गौराङ्गः पश्यन् रासस्थलीं रुदन् ।
भावावेशात् त्रिभङ्गः संश्चालुठत् प्रेमविह्वलः ॥१॥
तत्रास्ति श्यामकुटयाख्यं कुञ्जं मार्गस्य दक्षिणे।
वृतं नाना लतावृक्षौ र्मण्डितं मणि मन्दिरैः ॥२॥

परिक्रमा से दाहिनी तरफ जहाँ पर आगमन करके श्रीगौराङ्ग महाप्रभु जी रासस्थली दर्शन करते ही भावावेश में त्रिभङ्ग होकर खड़े हो गये, एवं प्रेम में विह्वल होकर रोदन करते हुये रासस्थली पर लोट पोट हो गये थे। वहाँ पर नाना प्रकार लता व वृक्ष समूह के द्वारा परिवेष्टित तथा मणिमय मन्दिरों के द्वारा सुशोभित श्यामकुटी नाम करके एक कुञ्ज विराजमान है ॥१।२॥

यत्रैवाभूत् कुसुम चयनं प्रेष्ठ ! मध्याह्न काले ।
रात्रो रासो भ्रमण-शयने चाद्भुतं केलिवृन्दम् ॥
श्रान्ता कान्ता रमण सहिता भूषिता नर्मयुक्ता ।
दृष्ट्वा कुर्य्या नयन सफलं श्याम कुट्याख्य कुञ्जम् ॥३॥

हे प्यारे ! जिस कुञ्ज में मध्याह्न के समय कुसुम चयन एवं रात्रिकाल में वन भ्रमण व रास विलास तदनन्तर शयन तथा अद्भुत क्रीड़ा समूह होते हैं, और क्रीड़ा विलास के अन्त में

केलि परिश्रान्ता श्री स्वामिनी जो अपने प्रियतम के साथ आभूषणों को धारण करके नाना प्रकार हास परिहास किया करती हैं; तुम उस श्यामकुटी नामक कुञ्ज के दर्शन कर अपने नयनों को सफल कीजिये ॥३॥

अष्टभिर्मणिभिश्चित्रं कुञ्जभित्ति चतुष्टयम् ।
नानारत्न चिताभ्यन्तः प्रकोष्टाङ्गन कुट्टिमः ॥४॥
चूड़ाग्रे रत्नकुम्भेन चित्रध्वजा विराजितम् ।
हेम कवाटिका युक्तं दिक्षु द्वार चतुष्टयम् ॥५॥
इन्द्रनील चिता रास मण्डपाङ्गन चत्वरम् ।
दिक्षु प्रोद्दीपयन् श्यामं राधिका मोद वर्द्धनम् ॥६॥
कौतुकाच्छ्याम भूषाढ्यः श्यामालेपाम्बरावृतः ।
प्रविष्टो यत्र गोविन्दो राधयापि न लक्ष्यते ॥७॥

कलापकम् ॥

जिस कुञ्ज के चारों ओर की दीवार आठों प्रकार मणियों के द्वारा सुचित्रित और जिसके भीतर का प्रकोष्ठ (महल) व आँगन एवं चबूतरा इत्यादिक नाना प्रकार रत्नों के द्वारा खचित हैं, तथा जिसके चूड़ा के ऊपर रत्नमय कलश के साथ विचित्र ध्वजा विराजित है। स्वर्ण निर्मित किवाड़ों के द्वारा जिसके चारों दिशाओं के चारों दरवाजे सुशोभित हैं, और इन्द्र नील मणि के द्वारा खचित रास मण्डप, आँगन व चबूतरा इत्यादि सब दिशाओं मे श्रीश्याम सुन्दर को उद्दीपन करते हुये श्री वृषभानु नन्दिनी के आनन्द वर्द्धन कर रहे हैं। जिस कुञ्ज में किसी दिन श्रीगोविन्द कौतुक परवश होकर श्यामवर्ण भूषण तथा श्यामवर्ण कस्तूरी चन्दनादि अनुलेपन श्री अङ्ग में लगाकर

एवं श्यामवर्ण वसन पहिर करके जब प्रवेश करते हैं, तब सखी जनों के लिये ढूँढ़ कर प्राप्त करना कठिन हो जाता है। अधिक और क्या, स्वयं श्री राधिकाजी भी श्री कृष्ण को ढूँढ़ करके नहीं पाती हैं, तो इनमें फिर विपक्षा सखी गण यदि नहीं पा सकें तो क्या आश्चर्य है? केवल चारों ओर श्यामता ही श्यामता अर्थात् अन्धकारमय देखती हैं ॥४।५।६।७॥

श्यामवल्ली वृतः श्याम-पत्र पुष्पैर्द्रमैर्वृतः ।
श्यामाभालि खगैर्युक्तः श्याम कुञ्जोऽस्ति तत्र वै ॥८॥
भुक्ति मुक्ति प्रदे यत्र कोटि तीर्थ फलप्रदे ।
सर्वसिद्धिं नरो वासात् प्रेम भक्ति लभेत च ॥९॥

वहाँ पर श्याम वर्ण लताओं के द्वारा वेष्टित और श्यामवर्ण पत्र एवं पुष्प हैं जिनके ऐसे वृक्ष समूह के द्वारा परिवेष्टित तथा श्यामवर्ण भौंरा व श्यामवर्ण पक्षियों से युक्त श्रीश्यामकुटी नामक कुञ्ज शोभायमान है। जो कुञ्ज स्वर्गादि भोग तथा पंच प्रकार मुक्ति एवं करोड़ तीर्थों के फलों को प्रदान करते हैं, और जहाँ पर निवास करने से मनुष्य निश्चय करके सर्व प्रकार की सिद्धि एवं प्रेम-लक्षणा भक्ति को प्राप्त करते हैं ॥८।९॥

शैलेन्द्रस्योपकण्ठे लसति सुखमयं धाम यच्छ्याम कुञ्ज ।
तन्मध्ये रत्नयुक्ताष्टमणि विरचिता दिव्य रासस्थली या ॥
तत्रैव श्रील राधा-मधुपति रचितां सश्य रासादि लीलां ।
भक्तानां चाप्यलभ्यां निवसननु सखे निर्जनैकान्तरत्या ॥१०॥

श्रीगिरिराजजी के कण्ठ समीप में परम सुखमय धाम जो श्यामकुटी नामक कुञ्ज सुशोभित है। उस कुञ्ज के बीच में रत्नों द्वारा खचित आठों प्रकार की मणियों से विनिर्मित जो मनोहर

रास मण्डली है; हे सखे! उस रास मण्डली पर ही श्रीयुक्त राधा माधव के रास, तथा उसके आस-पास में निकुञ्ज विलासादि साधारण ऐश्वर्य ज्ञान-मिश्रा भक्तजनों के दुर्ल्लभ लीलाओं का अवलोकन करो, एवं निर्जन में ऐकान्तिक प्रीत के साथ इस कुञ्ज में निवास करो ॥१०॥

जयति निखिल शोभा सञ्चितेऽभीष्टदं यत्।
कुसुम वन सुदेशे श्यामकुट्याख्य कुञ्जम्॥
विलसति गिरिवर्य्यस्याङ्गने दुर्गमं त—
न्न भजति बत कोवा कृष्ण सेवा भिलाषी ॥११॥

श्रीगिरिराजजी के आँगन में निखिल शोभा के द्वारा परिपूर्ण कुसुम बन के सुन्दर प्रान्त देश में, सर्व प्रकार अभीष्ट फल को देने वाला जो श्यामकुटी नाम करके एक कुञ्ज विराजमान है, वह सर्वोत्कर्ष में जय युक्त हो रहा है। वह कुञ्ज बड़े दुर्गम स्थान में है। अहो! जो लोग श्रीकृष्ण-सेवा के अभिलाषी हैं, उनमें से ऐसा कौन है कि जो इस कुञ्ज की सेवा न करे? अर्थात् श्रीकृष्ण सेवाभिलाषी अनुरागी मात्र ही आदर के साथ इस कुञ्ज की सेवा करते हैं ॥११॥

दोहा—श्यामकुटी की माधुरी, कहत बने नहिं बैन।
चहुँदिशि श्यामहि श्याम लखि, विकल रसिक मन नैन॥

गिरिवर चरणाब्जा न्निःसृताम्बु प्रपूर्ण
मणि खचित सुतीर्थश्चैक रत्नाख्य कुण्डम्।
लसति विविध वृक्षैर्वेष्टितं वल्लियुक्तै
रसयति हरिलीलां यत्र भक्तालिमाला ॥१२॥

श्रीगिरिराजजी के चरण कमलों से निकले हुये चरणामृत के द्वारा जो परिपूर्ण है, और जिसके चारों तरफ के घाट मणियों के द्वारा खचित हैं, ऐसा रत्नकुण्ड नामक एक कुण्ड शोभायमान है। जिसके चारों तट लताओं के द्वारा वेष्टित विविध प्रकार वृक्षों से आच्छादित हैं, और जहाँ पर श्रीभगवद्भक्त रूपी भौंरा गण निरन्तर श्रीहरि लीला रूपी रस का आस्वादन कर रहे हैं ॥१२॥

हंस सारस दात्यूह चक्रवाकादि निस्वनैः ।
कृष्ण लीला युतैः काव्यै र्व्याप्तं यत्तीर नीरकम् ॥१३॥

जिस कुण्ड के जल में तथा किनारे पर हंस, सारस, दात्यूह (पपीहा) व चकवा इत्यादि पक्षियों के द्वारा कीर्त्तित श्रीकृष्ण लीला युक्त काव्यों के द्वारा परिव्याप्त हैं, अर्थात् उन पक्षियों के मुख से स्वतः ही श्रीकृष्ण लीलामय काव्य उच्चारण होते रहते हैं ॥ १३ ॥

शैलेन्द्रस्य पदाब्ज निःसृत मरन्दापूर्ण कुण्डं वरं
मण्याबद्ध चतुस्तटं सदयित श्रीकृष्ण-सौख्यास्पदम् ।
यद्वारि स्पृशता मुदेति हृदये दास्याधिकारोत्सुकं
रत्नाख्यं तदिदंनमामि महिमापारं सुपद्माकरम् ॥१४॥

श्रीगिरिराजजी के चरण कमलों के निकले हुए मकरन्दों के द्वारा परिपूर्ण और मणियों के द्वारा बँधे जिनके चारों ओर के तट, प्रियाजी के साथ श्रीकृष्णचन्द्र के सुख विहार का स्थान व कमल समूह की खानि तथा जिसकी महिमा का पार नहीं है, एवं जिसके जल स्पर्श मात्र से हृदय में श्रीकिशोरी-किङ्करी होने की उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाती है; ऐसे रत्नकुण्ड नामक जो श्रेष्ठ कुण्ड है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥

लसति वर तमालो रत्नकुण्डस्य तीरे
वलित निविड़ पत्रो रत्न बद्धालबालः ।
व्रजनव युवराजः स्वालिवृन्दै र्यदग्रे
रचयति रसनृत्यं वाद्यगीतं च मत्तः ॥ १५ ॥

उस रत्नकुण्ड के किनारे पर एक श्रेष्ठ तमाल का वृक्ष सुशोभित है। जिसके बहुत सघन पत्र एवं रत्नों के द्वारा चारों ओर घेरा बँधा हुआ है, और जिस तमाल के आगे व्रज-नव युवराज श्रीकृष्ण निज सखी वृन्दों के साथ उन्मत्त होकर रसमय गीत, वाद्य व नृत्य इत्यादि विस्तार करते हैं ॥ १५ ॥

कल्पद्रुमाग्रे स्थित रास कुट्टिमं
तद्रत्नसिंहासन-योग पीठकम् ।
विज्ञै स्तथोक्तञ्च वदन्ति यद्धरेः
सेवापरा रास-विलास मन्दिरम् ॥ १६ ॥

वहाँ पर उस कल्पवृक्ष के आगे जो रास मण्डल विराजमान है। उसको महानुभावों ने योगपीठ रत्न सिंहासन करके कहा है, और श्रीकृष्ण की सेवापरा सखीगण जिसको रासविलास का मन्दिर करके कहती हैं। [जिस रत्न सिंहासन का संक्षिप्त विवरण "श्रीवृन्दावन लीलामृत" ग्रन्थ में ऐसा वर्णित है, कि होरी के समय एक दिन श्रीकृष्ण श्रीराधिकाजी के साथ श्रीगिरिराजजी की तरहटी में रत्न सिंहासन पर बैठकर सखियों के साथ विविध प्रकार प्रेम-परिहास कर रहे थे। उस समय श्रीमुखराजी अपनी नातिनी श्रीराधिकाजी को ढूँढ़ती हुई वहाँ पर आरही थीं देखकर श्रीकृष्ण एक सघन कुञ्ज के भीतर छिप गये। उस समय शङ्खचूड़ नामक एक यक्ष कंसके द्वारा प्रेरित होकर श्रीकृष्ण के विनाश

अभिप्राय से ढूँढ़ता हुआ श्रीगिरिराजजी की तरहटी में आया। उस समय वहाँ श्रीस्वामिनीजी रत्न सिंहासन के ऊपर बैठी हुई थीं, और ललितादि सखीगण चारों ओर उनकी सेवा कर रही थीं। सामने श्रीकृष्ण को न देख कर शङ्खचूड़ अपनी प्रतिहिंसा चरितार्थ करने के लिये एवं निज परम सुहृद कंस की मनस्कामना सिद्धि के लिये "मैं सिंहासन के साथ इस कृष्ण प्रिया श्रीराधिका जी को मस्तक पर धारण करके मथुरा में ले जाऊँगा" ऐसा मन में निश्चय करके उसी समय सिंहासन सहित श्रीस्वामिनीजी को उठा कर मस्तक पर धारण करके मथुरा की ओर दौड़ने लगा। श्रीस्वामिनीजी को दूर ले जाते देख कर उस समय श्रीवृन्दाजी व कुन्दलता इत्यादि व्याकुल होकर हे कृष्ण! तुम कहाँ हो, शीघ्र हम लोगों की रक्षा करो, ऐसा उच्च स्वर से हाहाकार करके पुकारने लगीं। उन लोगों की रोदन ध्वनि सुन कर श्रीकृष्ण जल्दी कुञ्ज से निकल कर श्रीमुखराजी के लिये आश्वासन व अभय प्रदान करते हुये कहने लगे, कि हे आर्य्ये! आप कोई चिन्ता न करें, मैं निश्चय करके अभी श्रीराधिकाजी को ले आता हूँ। यह सुनकर श्रीमुखराजी अश्रुयुक्त लोचनों में गद्‌गद् होकर कहने लगीं कि हे चन्द्रमुख! बेटा तेरी सदा जय हो। तब श्रीकृष्ण बड़े गर्व के साथ 'अरे दुष्ट नेक ठहर जा' ऐसा कहते हुए दौड़कर तत्क्षणात् शङ्खचूड़ के पास पहुँच गये। उन्हें देखकर वह यक्ष जल्दी भागने में असमर्थ होकर सिंहासन सहित श्रीस्वामिनीजी को छोड़ श्रीकृष्ण के साथ तुमुल युद्ध करने लगा। दूर से दर्शन करने वाली सखीगण आपस में ऐसा कहने लगीं, कि हाय! ऐसा दारुण यक्ष कहाँ से आ गया। इसका विशाल वक्षःस्थल पर्वत की तरहटी के सदृश है, एवं दोनों भुजाएँ तालवृक्ष के बराबर हैं; और हमारे प्राण प्यारे श्रीकृष्ण का श्रीअंग तो तरुण तमाल के सदृश अत्यन्त कोमल व कमनीय है, एवं उनके साथ

सहारा देने वाला कोई सुयोग्य मनुष्य भी तो नहीं है; न मालूम आज श्रीयशोदाजी की तपस्या का फल कैसा है। सबके देखते-देखते ही अकस्मात् यक्ष रण में पराजय हो गया। श्रीकृष्ण एक मुष्टिका के प्रहार से ही शङ्खचूड़ के प्राण सहित मस्तक स्थित मणि को अपहरण कर लिये। श्रीकृष्ण के प्रबल पराक्रम से रण-दुर्मद परमधृष्ट शङ्खचूड़ को मृत्यु शय्या में शयन करते देखकर स्वर्गवासी देवतागण सहर्ष बारम्बार श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए उनके ऊपर पुष्पवृष्टि करने लगे। दूर से दर्शन करने वाली श्रीपौर्णमासीजी तथा ललितादि सखीगण भी परम आनन्दित होकर टकटकी लगाकर समर-विजयी श्रीकृष्णचन्द्र के बदन चन्द्र का अवलोकन करने लगीं। तब श्रीकृष्ण उस शङ्खचूड़ के मस्तक स्थित अतुल प्रभा सम्पन्न मणि को लेकर सखियों के परस्पर वाद-विवाद के भय से प्रेम के साथ श्रीबलदेवजी के हाथ में समर्पण करके अकेले श्रीस्वामिनीजी के पास आ गये। प्राणनाथ को अपने समीप में समागत देखकर श्रीस्वामिनीजी "हे गोविन्द! हे गोकुलचन्द्र! मुझे रक्षा करो, रक्षा करो" ऐसा कहते हुए अधीर होकर रोने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने श्रीस्वामिनीजी को आलिङ्गन करके कहा, कि हे प्रिये! मैं तो शङ्खचूड़ को विनाश करके आया हूँ, अब सब शङ्का को छोड़कर मन को स्थिर करो। इस प्रकार श्री श्रीराधाकृष्ण दोनों के सम्मिलित होने पर श्री-पौर्णमासी व मुखरा इत्यादि आकर प्रेम से श्रीकृष्ण को आलिङ्गन किये, एवं अत्यन्त प्रीति के साथ बारम्बार नीराजन करके कहने लगीं, कि हे वीर! आज बड़े भाग्य से तुम्हारी सदा आराधिका श्रीराधिकाजी की तुमने रक्षा की। उस समय श्रीबल-देवजी ने मधुमंगल के द्वारा उस मणि को श्रीराधिकाजी को देने के लिये भेज दी। मधुमंगल उस मणि को लाकर श्री श्रीराधा-कृष्ण के आगे रखकर कहने लगे, कि यह मणि श्रीबलदेवजी ने

श्रीराधिकाजी के लिये भेजी है। यह सुनकर श्रीकृष्ण परम आनन्दित होकर कहने लगे, कि कौस्तुभ के कुटुम्ब एवं समस्त मणियों से श्रेष्ठ यह अत्युज्ज्वल मणि श्रीस्वामिनीजी के कण्ठ में ही पहिरने योग्य है। तब श्री ललिताजी ने उस मणि को लेकर श्रीस्वामिनीजी के कण्ठ में पहिराय दी। उस समय श्रीस्वामिनीजी की अनुपम शोभा को देखकर सब कोई परमानन्द में निमग्न हो गये। इस प्रकार रत्नसिंहासन पर श्री श्रीराधाकृष्ण के लीला प्रसङ्ग में शङ्खचूड़ का बध वृत्तान्त समाप्त।] ॥१६॥

रत्नोज्ज्वलं तत् स्थलराज विस्तृतं।
यद्रास लीला सुखपूर्ण मन्दिरम् ॥
श्रीकृष्ण-संस्मारक मात्म सद्गुणै–
र्वीक्ष्येति राधाप्रिय सङ्गमोत्सुकम् ॥१७॥

जो विस्तृत स्थलराज रासलीला सुख के परिपूर्ण मन्दिर स्वरूप एवं रत्नसमूह के द्वारा समुज्ज्वल है, और जो अपने स्वाभाविक सद्गुणों के द्वारा श्रीकृष्णचन्द्र को स्मरण कराता है, तथा जिसके दर्शन करते ही श्रीवृषभानुनन्दिनी अपने प्रियतम से मिलने के लिये परम उत्कण्ठा को प्राप्त हुआ करती हैं ॥१७॥

यत्रागतो भृङ्ग मयूर शारी–
शुकावलीनां परितः सुगीतम्।
श्रुत्वा च रासाय विलोभितोऽभू–
च्छ्यामः स्वतः श्यामकुटीति सिद्धिः ॥१८॥

जहाँ पर आगमन करके श्रीश्यामसुन्दर सर्व दिशाओं में भौंराओं के तथा मयूर, शारी व शुकादि पक्षी समूह के सुमधुर सङ्गीत श्रवण करके रास-विलास के लिये विशेष रूप से लोभ-

युक्त हो जाते हैं। उसी कारण से वह स्थान श्यामकुटी नाम करके सदा प्रसिद्ध है ॥१८॥

दोहा—शुक पिक मधुपन गीत सुनि, बन शोभा लखि श्याम।
होत लुब्ध जहँ रास हित, श्यामकुटी यौं नाम ॥

राधां यत्राहनि मृगयते मित्र हस्तावलम्बी
चिन्तायुक्तो रसिक प्रवरः श्यामकुञ्जाख्य कुञ्जे।
पश्यन् दूराद्धसितवदनां राधया प्रेरितालीं
श्यामः प्रेम्णा द्रवित हृदयः सादरं तामवादीत् ॥१९॥

जिस श्यामकुटी नामक कुञ्ज में नित्य प्रति आ करके रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण, सुबल सखा का हाथ पकड़ कर श्रीवृषभान नन्दिनी को ढूँढ़ते हैं, और अपनी प्रिया के मिलने की चिन्ता करते हुये अकस्मात् दूर से हँसती हुई श्रीस्वामिनीजी की भेजी भई जो सखी है, उसको देख कर श्री श्यामसुन्दर प्रेम के मारे द्रवीभूत चित्त होकर बड़े आदर के साथ उससे ऐसा कहते हैं ॥ १९ ॥

कस्मादालि ! प्रियतम ! तव प्रेयसी पादपद्मात्
का वार्त्ता सा निभृत निलये रोधितार्या-कुवाक्यैः।
इत्थं श्रुत्वा कमल नयने ! हाद्य किं वञ्चितोऽहं
मागाः खेदं वदति तुलसी ह्यागतेयं सहाली ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण उक्तिः—हे सखी ! कहाँ से आई हो ? सखी उक्तिः—हे प्रियतम ! आपकी प्रियाजी के चरण कमलों में से। श्रीकृष्ण—वहाँ की क्या खबर है ? सखी—श्रीस्वामिनीजी को गारी देकर मैयाजी ने घरमें रोक लई हैं। ऐसा सुन कर श्रीलालजी बोले, कि

हे कमल नयने ! आज क्या मैं वञ्चित ही रहूँगा ? ऐसी खेदोक्ति सुनकर तुलसी नाम की सखी कहने लगी कि आप खेद मत करो, ये देखो श्रीस्वामिनीजी अपनी सखीन के साथ यहाँ आ गई हैं ॥ २० ॥

तामागता मिह निशम्य प्रियां दिदृक्षुः
प्रोत्सुक्य चञ्चलमनाः सुविदग्ध मौलिः ।
निष्कास्य हारपदकं निज कण्ठ देशाद्
विन्यस्य तत्करपुटे मुदितोऽवदत्ताम् ॥ २१ ॥

सखी के मुख से "प्रियाजी यहाँ आगई हैं" ऐसा सुन कर उनकी दर्शन उत्कण्ठा से अत्यन्त चञ्चल चित्त होकर, वे सुचतुर चूड़ामणि श्रीकृष्ण अपने कण्ठ से पदक युक्त हार उतार कर सखी के हाथ में अर्पण करके बड़े आनन्दित होकर सखी से कहने लगे ॥ २१ ॥

कुत्र स्थेयं निह्नुता सा किमर्थं
क्रुद्धा चेन्मद्दोष लेशोऽपि नास्ति ।
चेन्नर्म्मं तद्दुःखितान्त न युक्तं
हा हा क्षिप्रं लोकयामूं प्रियां मे ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण उक्तिः—अरी तुलसी ! वे कहाँ पर हैं ? छिपकर क्यों रह रही हैं ? जो कहो कि उन्होंने क्रोध किया है, तो मेरा तो कोई दोष का लेश भी नहीं है । यदि तुम कहो कि वे परिहास कर रही हैं, तो मेरे इस दुखित चित्त पर परिहास करना तो उचित नहीं है । हाय हाय ! शीघ्र ही तुम उन प्रियतमा के दर्शन कराओ ॥२२॥

या ते चित्त सुमत्त कुञ्जर वशीकारेऽप्यलं पद्मिनी
या वै नेत्र चकोर तृप्ति विषये हास्यामृतावर्षिणी।
सैवेयं दयितात्र पुष्पा-चयना योत्तोलति द्वै भुजे
पश्याम् व्रज तां हरे! फलितवान् त्वद्भाग्य-कल्पद्रुमः॥ २३॥

जो श्रीस्वामिनीजी आपके चित्त रूपी मदमत्त हस्ती के वशीकरण विषय में समर्थ हस्तिनी रूपिणी हैं, तथा जो आपके नेत्र रूपी चकोरों को सन्तोष प्रदान करने के लिये मन्द मुसकान रूपी अमृत का वर्षण करने वाली हैं। सोई ये आपकी प्रियतमा यहाँ पर पुष्प चयन करने के लिये दोनों हाथ ऊपर को उठाये हैं। हे हरे! इनको देखो, और इनके पास जाओ आपका भाग्य रूपी कल्प वृक्ष आज फलीभूत हो गया है॥ २३॥

कस्यादेशात् कुसुम चयनं त्वं करोस्यत्र नित्यं
दिष्टया प्राप्तासि भय रहितां मद्वनो ल्लुण्ठिकां त्वाम्।
धृत्वा कुञ्जंस्मर नरपतेः सम्मुखं प्रापयामी—
त्युक्त्वास्याः सन्निकट गमने हुङ्कृतैः स्तम्भितोऽभूत्॥ २४॥

तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र श्रीस्वामिनी के पास जाकर कहने लगे कि, कौन की आज्ञा पाकर तुम नित्य मेरे बन में निर्भय पुष्प चयन कर रही हो? आज मेरे सौभाग्य से मेरे बन को लूटने वाली तुम मिली हो, अभी तुम्हें पकड़ कर इस बन के सम्राट् जो कन्दर्प चक्रवर्त्ती हैं, उनके सामने कुञ्ज में ले जाऊँगा। ऐसे कहते हुये रसिकेन्द्र शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र श्रीप्रियाजी के समीप में जाने पर उनके हुङ्कार से ही स्तम्भित हो गये॥ २४॥

प्रिया लोकात् स्वाग्रे नयन युग भग्नां प्रणयतो
ह्रिया तिर्य्यग्वक्त्रावृत मुदित भावै र्विचलिताम्।

अमूं दृष्ट्वा कृष्णं प्रखर ललितोवाच नलिनीं
त्यज स्पर्शेच्छा चेद्भृज मधुपते कुन्दलतिकाम् ॥२५॥

अपने सामने प्रियतम को अवलोकन कर प्रेमके स्वभाव से दोनों नेत्र तिरछे हो गये, और लज्जा के मारे वदन कमल को टेढ़ा कर घूँघट दे करके हृदय में समुदित बहुविध भावों की तरङ्गों से अतिशय चञ्चला श्रीस्वामिनीजी को देख कर प्रखर स्वभावा श्रीललिताजी श्रीविहारीजी से कहने लगीं कि, हे मधुपते! आप इस कमलिनी को छोड़ो, और यदि स्पर्श करने की इच्छा हो, तो इन सुभद्रप्रिया श्रीकुन्दलताजी को भजो। अर्थान्तर में हे मधुप! कमलिनी के मकरन्द पीने का समय यह नहीं है, पीना हो तो इस प्रफुल्लित कुन्द पुष्प का मकरन्द पीओ ॥ २५ ॥

इत्थं तयो र्दर्शनतः प्रवर्द्धित—
प्रेम स्वभावोत्थित भाव सङ्करैः।
विक्षुब्ध सोन्मत्त हृदिन्द्रियौ च तौ
स्वानन्द सिन्धा ववगाहतो भृशम् ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीराधा माधव परस्पर के दर्शन लाभ से परस्पर के श्रीअङ्ग में प्रकृष्ट रूप वृद्धिशील प्रेमके स्वभाव से जो भाव समूह उठ रहे हैं, उन भावों के परस्पर संग्राम से विशेष प्रकार क्षोभयुक्त व उन्मत्त हो रहे हैं जिनके हृदय एवं इन्द्रिय समूह; ऐसे श्रीराधा माधव निज स्वरूप भूत आनन्द के समुद्र में निरतिशय रूप से अवगाहन (स्नान) करने लगे ॥ २६ ॥

दोहा—रसिक शिरोमणि भावयुत, मिले प्रियाके संग।
प्रेम उदधि में डूब गये, देखत भाजि अनंग ॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्यामकुञ्जे मिलन लीला वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥

वसन्त समये राधा माधवौ स्वप्रियालिभिः ॥
कुरुतो रस-रासादीन् श्यामकुट्यङ्गनेऽपि च ॥१॥

वसन्त ऋतु के समय भी श्यामकुटी के आँगन में श्रीश्रीराधा-माधव युगल सरकार अपनी प्रिय सखियों को साथ लेकर परमानन्दमय रासविलास इत्यादिक लीलाओं को किया करते हैं ॥१॥

राधाऽभिसारिकाऽगत्य गोवर्द्धन-समीपके ।
श्यामकुट्यङ्गने प्रेम्णा ह्यमिलन्माधवेन सा ॥२॥

श्रीवृषभानु नन्दिनी अभिसार करके श्रीगोवर्द्धन के सन्निकटवर्त्ती श्यामकुटी के आँगन में आगमन कर बड़े प्रेम के साथ ही श्री माधव के सहित सम्मिलित होती हैं ॥२॥

रासोपयोग्य वेशाढ्यौ विदग्धा-सखिभिर्वृतौ ।
नृत्य-गीत-सुवाद्याद्यैः क्रीड़तो रासमण्डले ॥३॥

तदनन्तर श्रीश्रीराधा माधव रास विलास के उपयोगी वेष भूषण धारण करके परम प्रवीणा सखी वृन्दों के द्वारा परिवेष्टित होकर रास मण्डल में नृत्य, गीत व सुमधुर वाद्य इत्यादि द्वारा नाना प्रकार भङ्गी विस्तार पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥३॥

सजल जलद कान्तिं पिच्छचूड़ं त्रिभङ्गं ।
विरचित रसरासं गीतवाद्ये प्रवीणम् ॥

विकच कमल नेत्रं मुग्ध-मन्द स्मितास्यं ।
मुखरित चरणाब्जं नौमि तं राधिकेशम् ॥४॥

जिनकी कान्ति नवीन जलयुक्त मेघमाला के बराबर है, और जिनके मस्तक पर मयूर पुच्छ की चूड़ा विराजित है, तथा जो त्रिभङ्ग युक्त होकर रास रस की रचना कर रहे हैं, एवं जो गीत वाद्य विषय में परम प्रवीण हैं, और प्रफुल्ल कमल दल सदृश जिनके नयन युगल हैं। जिनके श्री मुखारविन्द में मनोहर मन्द हास्य विराजमान है, और श्रीचरण कमलों में शब्दायमान नूपुर सुशोभित हैं; ऐसे श्री राधिका-प्राण वल्लभ को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

नव जलधर कान्तिं न्यक्कृतः स्वाङ्गकान्त्या
मधुर सरस नृत्ये गीत वाद्ये प्रवीणः ।
विविध रस तरङ्गैः प्रेयसी यूथवृन्दै—
र्विलसति गिरिवर्य्य स्याङ्गने श्यामकुञ्जे ॥५॥

जो अपने श्रीअङ्ग कान्ति के द्वारा नवीन मेघमाला की कान्ति को तिरस्कार कर रहे हैं, और सुमधुर व रसमय नृत्य, गीत एवं वाद्य विषय में जो परम प्रवीण हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने प्रेयसी वृन्द के साथ त्रिविध आनन्द की तरङ्ग में तरङ्गायित होकर श्रीगिरिराजजी के आँगन स्थित श्यामकुटी नामक कुञ्ज में विशेष रूप से शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥५॥

वंशीं वीणां मृदङ्गं सुमधुर मुरलीं मन्दिरां पाविकाद्यां ।
वाद्यं तालांश्च गीतं विधिमव रचितं कीर्त्तितं नारदाद्यैः ॥
नृत्यं यत्ताण्डवाद्यं बहुविध कलया श्लाघितं रासलास्ये ।
तद्गोविन्दः स्वकान्ता भिरिह नययुतं सर्वमुच्चै र्व्यतानीत् ॥६॥

श्रीरास मण्डल में वंशी, वीणा, मृदङ्ग, सुमधुर मुरली, मँजीरा है और पाविका (वाद्य विशेष, जो स्वामिनीजी के हाथ में रहता है) इत्यादि वाद्य समूह एवं विविध प्रकार के ताल समूह तथा ब्रह्माजी व महादेवजी के रचित एवं नारदादि मुनियों से कीर्त्तित जो गान समूह, और प्रशंसा के योग्य जो बहु विध कलायुक्त ताण्डवादि नृत्य, उन सबों को श्रीगोविन्द निज प्रेयसी वृन्द के साथ क्रम पूर्वक अतिशय करके विस्तार करने लगे ॥६॥

गान्धारादीं स्त्रय ग्रामां श्चैकविंशति मूर्च्छनाः ।
श्रुती र्द्वाविंशति स्तानान् विविधान् गमकां स्तथा ॥७॥
निबद्धं त्रिविधं चात्र जातिश्च द्विविधां मुदा ।
ग्रहान् न्यास युतां श्चेमान् रागा नानाविधाञ्जगुः ॥८॥

श्रीरास मण्डल में श्रीश्रीराधाकृष्ण निज प्रेयसी वृन्द के साथ षडज, मध्यम व गान्धार ये तीन प्रकार के ग्राम, एक विंशति २१ प्रकार की मूर्च्छना, द्वाविंशति २२ प्रकार की श्रुति, उनंचास ४९ प्रकार की तान, पंचदश १५ प्रकार के गमक, तथा शुद्ध, सालग व संकीर्ण ये तीन प्रकार के निबद्ध, और शुद्ध व विकृता भेद से दो प्रकार की जाति, एवं न्यासयुक्त विविध प्रकार ग्रह समूह को, तथा जन समूह के चित्त को रंजन करने वाले नाना प्रकार राग समूह को आनन्द के साथ गान करने लगे ॥७८॥

सोऽयं पीतघटी सुशोभित कटीदेशः करे वंशिकां ।
हारं वक्षसि कौस्तुभादि खचितं बिभ्रत्पदे नूपुरम् ॥
सव्येऽञ्जन्मृदु वक्र पिञ्छ मुकुटं गण्डे लसत्कुण्डलं ।
रासे नृत्यति नन्दनन्दन विभुर्गाय न्निजैः स्वालिभिः ॥९॥

पीताम्बर के द्वारा जिनका कटिदेश सुशोभित है, और श्री हस्त में वंशी विभूषित है, एवं वक्षःस्थल में कौस्तुभादि मणियों के द्वारा खचित हार सुशोभित है, तथा श्रीचरण कमलों में नूपुर विराजित हैं। जिनके मस्तक पर मयूर पुच्छ का मुकुट वाम भाग में ईषत् झुक रहा है, और दोनों गण्ड देश में मणिमय कुण्डल शोभायमान हैं। ऐसे ये श्रीमन्नन्द नन्दन प्रभु अपने परमा सुन्दरी सखी वृन्द के साथ रास मण्डल में गान करते हुये नृत्य कर रहे हैं ॥९॥

दोहा—नाचत रास विलास में, गावत सहचरि सङ्ग ।
उपजत छिन छिन में हिये, कोटिक भाव तरङ्ग ॥

काश्चित् श्लिष्यति संभ्रमन् मधुपतिः काश्चित् समालोकते
कासांश्चिन्मधुराधरं पिबति सः कासां कुचौ कर्षति ।
रासे श्रीव्रजसुन्दरी भिरिह संगीतो मुदा नर्त्तितो
रेमे ताः परिनर्त्तयंश्च रमयन् संगापयन् श्लाघयन् ॥१०॥

मधुपति श्रीकृष्णचन्द्र रास मण्डल में नृत्य गति से परिभ्रमण करते हुये कई गोपियों को आलिङ्गन, और कई गोपियों के अधर-सुधारस पान, एवं कई गोपियों के वक्षःस्थल पर कर कमल अर्पण करते हुये श्रीव्रज सुन्दरियों के द्वारा प्रेरित होकर आप आनन्द के साथ सुमधुर गान तथा नृत्य करने लगे। तैसे आप भी उन व्रज सुन्दरियों को सब तरह से नचाते हुये, गान कराते हुये व रमण कराते हुये तथा प्रशंसा कराते हुये स्वयं विविध प्रकार से रमण करने लगे ॥१०॥

श्रीरास मण्डलं य, ल्लसति ललित मद्भुते श्यामकुञ्जे ।
तस्मिन् राधाकृष्णौ, सदा रास-रसाविष्टौ भज मनः ॥११॥

श्रीराधेश्याम

THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

अरे मन! तू अद्भुत श्यामकुटी कुञ्ज में जो मनोहर शोभायमान रास मण्डल सुशोभित है, वहाँ पर सर्वदा रास रस में अभिनिविष्ट चित्त श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल को निरन्तर भजन कर ॥११॥

॥ श्रीश्रीनन्दसुताष्टकम् ॥

नव मेघ विनिन्दित कान्तिवरं
मदनार्बुद निर्जित मञ्जुतरम्।
तरुणीगण मोहन पुष्पशरं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१२॥

अरुणाब्ज जयिन् चरणाब्जतलं
कल नूपुर लञ्जित हंसकलम्।
गति गञ्जित मत्त करीन्द्रकुलं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१३॥

तड़ि दुज्ज्वल संधृत पीतपटं
कटिवेष्टित किङ्किणि शब्दयुतम्।
विपुलोरसि कौस्तुभ हारकुलं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१४॥

नव मल्लिक दाम सुबद्ध शिखं
मुकुटोपरि चञ्चल पिच्छ युतम्।
घनसार घनार्चित भालतलं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१५॥

मकराकृति कुण्डल गण्डयुगं
नयनाम्बुज वङ्किम भावयुतम् ।
अरुणाधर निन्दित विम्बफलं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१६॥
जित कोकिल काकलि मिष्ट गदं
दशनोज्ज्वल मर्दित कुन्द मदम् ।
विजिताब्ज निशामणि हास्ययुतं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१७॥
परिहास विशारद चित्तहरं
मुरली ध्वनि संयुत गीत परम् ।
जित कार्मुक भ्रूयुग भङ्गि धृतं
भज रास रसोन्मद नन्द सुतम् ॥१८॥
कर काञ्चन कङ्कण भूषणकं
व्रज सुन्दरि वेष्टित नृत्य परम् ।
रसिकेन्द्र शिरोमणि रूप धृतं
भज रास रसोन्मद नन्दसुतम् ॥१९॥
यदि वाञ्छसि हे प्रिय ! शान्ति पदं
भज शीघ्र मकिञ्चन भक्त कुलम् ।
इदमष्टक माश्रय भक्तियुतं
ध्रुव माप्स्यसि तत्पद दास्य धनम् ॥२०॥

इति श्रीश्रीनन्द सुताष्टकं सम्पूर्णम् ॥

अस्यानुवादः—नवीन मेघमालाओं की विशेष रूप से निन्दा करने वाली उत्कृष्ट कान्ति जिनकी है, और जो अतिशय सौन्दर्य व माधुर्य के द्वारा दश करोड़ कामदेव को पराजित कर रहे हैं, तथा तरुणी जन के मोहन करने वाले अप्राकृत कन्दर्प स्वरूप जिनका है; हे प्यारे! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीमन्नन्द नन्दन का भजन करो ॥१२॥

जिनके चरण कमल के तलवा अरुणिमा के द्वारा अरुण वर्ण कमलों को पराजय कर रहे हैं, और जिनके नूपुरों की सुमधुर ध्वनि राजहंसों की कल-कल ध्वनि को लज्जित कर रही है, तथा जिनके चरण कमलों की गति मदमत्त गजराज समूह को गञ्जना दे रही है; हे प्यारे! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीनन्द तनय का भजन करो ॥१३॥

जो सौदामिनी सदृश उज्ज्वल पीतवर्ण पट्टवस्त्र परिधान किये हैं, और जिनके कटि देश में झन् झन् शब्द युक्त किङ्किणी परिवेष्टित है, तथा जिनका विशाल वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि तथा विविधप्रकार हारों के द्वारा सुशोभित है; हे प्यारे! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीनन्दसुत का भजन करो ॥१४॥

नवीन मल्लिका पुष्पों की माला द्वारा जिनके केशपाश सुन्दर बँधे हुये हैं, और जिनके मुकुट पर मयूर पङ्ख चञ्चल हो हो रहे हैं, तथा जिनका ललाट देश मृगमद, केशर, कर्पूर, चन्दन मिश्रित तिलक के द्वारा सुचित्रित है; हे प्यारे! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीनन्दात्मज का भजन करो ॥१५॥

जिनके दोनों कपोल मकराकृति कुण्डल के द्वारा सुशोभित हैं, और जिनके नयन कमल तिरछे तथा भाव भूषण में विभूषित हैं, तथा जो अरुण वर्ण अधर शोभा के द्वारा पके हुये विम्बफल

की निन्दा कर रहे हैं; हे प्यारे ! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीव्रजराज नन्दन का भजन करो ॥१६॥

जिनके अमृतमय मधुर वचन कोकिलों की कुहू-कुहू ध्वनि को पराजय कर रहे हैं, और जिनकी दन्त पंक्ति कुन्द कलियों के सौन्दर्य जनित गर्व को खर्व कर रही है, तथा जो मृदु हास्य युक्त मुखारविन्द के द्वारा कमल एवं चन्द्रमा का विशेष रूप से पराभव कर रहे हैं; हे प्यारे ! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीव्रजराज कुमार का भजन करो ॥१७॥

जो परिहास-पाण्डित्य के द्वारा सबके चित्तों को हरण कर रहे हैं, और जो मनोहर मुरली ध्वनि के साथ सङ्गीत परायण हैं, तथा जो भ्रू युगल में कामदेव के पुष्प धनुष को जीतने वाली विविध प्रकार भङ्गी को धारण कर रहे हैं; हे प्यारे ! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीनन्द सुअन का भजन करो ॥१८॥

जिनके कर युगल स्वर्ण निर्मित कङ्कणादि आभूषणों के द्वारा विभूषित हैं, और जो व्रज सुन्दरियों से परिवेष्टित होकर परमानन्द में नृत्य कर रहे हैं, तथा जिन्होंने रसि केन्द्र शिरोमणि रूप को धारण किया है, हे प्यारे ! तुम ऐसे रास रस में उन्मत्त श्रीनन्द दुलारे का भजन करो ॥१९॥

हे प्यारे ! यदि तुम परमशान्ति पद को प्राप्त करना चाहते हो, तो विना विचारे ही शीघ्र भगवान् के निष्किञ्चन भक्तजनों की सेवा करो, और इस अष्टक को भक्ति पूर्वक पाठ व कीर्त्तन करो, तो निश्चय करके श्रीमन्नन्द नन्दन के चरण कमलों की प्रेम सेवा रूपी सम्पत्ति को प्राप्त हो जाओगे ॥२०॥

इति श्रीश्रीनन्दसुताष्टकस्यानुवादः सम्पूर्णः ॥

इत्थ मर्द्धनिशां नीत्वा प्रविष्टौ मणि मन्दिरम्।
निर्वृन्त पुष्पशय्यायां सखिभिः सेवितौक्षणम् ॥२१॥
भोजनायोपविष्टौतौ मृदु पुष्पांशुकासने।
स्वसख्या-रूप मञ्जर्याऽऽनीतं यच्च गृहाद्वनात् ॥२२॥
रम्भा पलाश पत्राणां कुण्डी स्थाल्यादिषु क्रमात्।
मिष्टान्न वटकादीनि पूपानि मोदकानि वै ॥२३॥
सुपक्व बहु भेदानि स्वाम्राद्दीनि फलानि च।
सुपानकानि पानाय वृन्दा प्रेम्णा ददौ शनैः ॥२४॥
तानि पञ्चेन्द्रियाह्लादी न्यशित्वा नर्म संयुतौ।
कृत आचमनं कृत्वा पुष्पतल्प मधिश्रतौ ॥२५॥
दासिभिः सेवितौ तत्र ताम्बूल-पाद सेवनैः।
अन्योन्याश्लिष्य सर्वाङ्गौ निद्रामुख मवापतुः ॥२६॥

॥ षड्भिःकुलकम् ॥

इस प्रकार अर्द्धरात्रि पर्यन्त रास विलासादिक के द्वारा अति वाहित करके श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल मणिमय मन्दिर में प्रवेश कर डाँठो रहित सुकोमल पुष्प निर्मित शय्या पर बैठ गये तब सेवा परा सखीजन थोड़ी देर वीजनादिक के द्वारा सेवा करने लगीं। प्रिय सखियों की प्रेम सेवा से स्वस्थ होकर भोजन के निमित्त कोमल पुष्पों के ऊपर वस्त्रयुक्त आसन पर बैठने से श्रीवृन्दादेवी अपनी दासियों के द्वारा वृन्दावन के बन से जो उत्तम-उत्तम फल मँगाये थे, और श्रीरूप मञ्जरी अभिसार करके आने के समय घर से जो उत्तम-उत्तम पकवान् मिष्टान्न इत्यादिक लाईं थीं, उन सब सामग्रियों को केला व पलाश पत्र की बनीं

हुईं थाली एवं दोना आदिक में क्रम पूर्वक नाना प्रकार के मिष्टान्न, बड़ा, पकोड़ा, पिष्टक, लड्डू और बहु प्रकार के सुपक्व आम, कटहल, केला, खजूर, नाशपाती, अनार, अङ्गूर, तरबूज, खरबूजा, इत्यादिक फल एवं पीने के लिये उत्तम शर्वत व शिखरिणी इत्यादिक पेय पदार्थों को श्रीवृन्दा देवी प्रेम के साथ धीरे-धीरे परोसने लगीं। तब श्रीश्रीराधाकृष्ण दोनों हास परिहास के साथ पञ्च-इन्द्रियों को सुख देने वाले उन सब उत्तम-उत्तम वस्तुओं को भोजन कर तदनन्तर आचमन करके पुष्प शय्या पर जाकर शयन करने पर दासी जन श्रीमुख कमल में सुवासित ताम्बूल अर्पण करके धीरे-धीरे श्रीचरण कमलों की सेवा करने लगीं। इस प्रकार सुसेवित होकर दोनों परस्पर सर्वाङ्ग आलिङ्गन करके निद्रासुख का अनुभव करने लगे अर्थात् सो गये ॥२१॥ २२।२३।२४।२५।२६॥

क्षणात् प्रबोधितौ प्रेम्णा कन्दर्प केलि वारिधौ ।
मग्नौ बभूवतुस्तप्तः स्वर्णद्यां गजराड़िव ॥२७॥

थोड़ी देर पीछे प्रिया प्रियतम दोनों जाग्रत होकर सुरधुनी में दावानल से तप्त गजराज जैसे नहाते हैं, तैसे ही दोनों प्रेम के साथ कन्दर्प क्रीड़ा समुद्र में अवगाहन करने लगे, अर्थात् परम प्रेममय-लीलारस समुद्र में डूबने लगे ॥२७॥

वल्लिरन्ध्र वाहि दिव्य गन्ध वायु सेविते
सारि कीर कोकिलादि मञ्जु काव्य कूजिते ।
पुष्प वल्लि वेष्टिते च कल्पवृक्ष मण्डिते
द्वार देश पुष्पमाल्य पल्लवादि शोभिते ॥२८॥

भृङ्गयूथ गुञ्जिते च दिव्य पुष्प तल्पके
दर्शितालि वृन्द नेत्र चातकालि तृप्तिदे।
श्यामकुञ्ज मध्यगे गिरीन्द्र राज कन्दरे
गौर-नील नागरा वनङ्ग विह्वलौ भजे ॥२६॥

युग्मकम् ॥

श्रीगिरिराजजो की कन्दरा में जो कुञ्ज, लता छिद्रों के द्वारा प्रवाहित मनोहर सुगन्ध युक्त वायुद्वारा सुसेवित हो रहे हैं, और सारिका, शुक व कोकिलादि पक्षियों के कल-कूजन रूप सुमधुर काव्यों के द्वारा प्रतिध्वनित हो रहे हैं, एवं पुष्प युक्त लताओं के द्वारा परिवेष्टित व कल्प वृक्ष समूहों से सुमण्डित हैं, तथा जिनके द्वार देश पुष्पमाला व कोमल कलिका युक्त नवीन पल्लवादिकों से सुशोभित हैं। जहाँ पर भौंराओं के यूथ गुनगुन शब्द से सुमधुर गुञ्जार कर रहे हैं, और जो कुञ्ज दूर से दर्शन करने वाली सखियों के नेत्र रूपी चातक समूहों को तृप्ति प्रदान कर रहे हैं; ऐसे श्यामकुञ्ज के बीच में मनोहर पुष्प निर्मित शय्या पर जो श्रीश्रीगौर एवं नील वर्ण नागर-नागरी युगल अनङ्ग रस में विह्वल हो रहे हैं, मैं सर्वदा उनका भजन करता हूँ ॥२८।२६॥

दोहा—प्यारी पिय सुख देन को, धरि हैं सौंज अनूप।
नैन थके लखि श्यामकुँज, सब कुञ्जन के भूप ॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्यामकुञ्जे रासादि वर्णनं
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥

प्राच्यां तच्छ्याम कुञ्जस्य राजते वादिनी शिला ।
या ग्रीवा गिरिराजस्य कृष्ण-वाद्य सुखप्रदा ॥१॥
रासकालेऽपि सा हर्षा डुम्फवद् वादिता स्वयम् ।
दर्शनात् सर्वपापघ्नी चान्ते मोक्षगति प्रदा ॥२॥

युग्मकम् ।

पूर्व वर्णित श्यामकुटी कुञ्ज के पूर्व दिशा में श्रीकृष्णचन्द्र के वाद्य सुख को प्रदान करने वाली वादिनी शिला विराजमान है। जो शिला श्रीगिरिराज महाराज की ग्रीवा अर्थात् कण्ठ स्वरूपा है। श्रीरासादिक लीला के समय भी वह शिला स्वयं परमानन्दित होकर ढप की तरह मधुर-मधुर बाजा करती है। जो शिला अपने दर्शन करने वालों को तत्क्षणात् समस्त पापों से निष्कृति करती है, एवं देहान्त काल में मोक्षगति प्रदान करती है ॥१।२॥

तत् कुञ्ज याम्य दिशि शैल शिलो परिष्टा-
च्छ्रीकृष्ण-वान चरणाम्बुज सुष्ठु चिह्नम् ।
ब्रह्मादि वाञ्छित महो किल योगिवृन्दै-
र्दुष्प्राप्य मस्त्यखिल साधन-साध्यवस्तु ॥३॥

उस श्यामकुटी कुञ्ज के दक्षिण दिशा में थोड़ी दूर पर श्रीगिरिराजजी की शिला में ही, अहो! ब्रह्मादि देवताओं के चिर वाञ्छित एवं योगिवृन्दों के द्वारा दुष्प्राप्य तथा निखिल साधनों के द्वारा अन्तिम साध्य वस्तु साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र के बाम चरण कमल का सुस्पष्ट चिह्न आज तक भी कृपा करके लोक लोचन के गोचरी भूत हो रहा है ॥३॥

तद् याम्यां यत्र कृष्णस्य सखिभि र्लुण्ठितं बलात्।
रामेङ्गितेन सूर्य्यस्य नैवेद्यं हि वटोः करात् ॥४॥
यस्मिन् स्वसखिभिः कृष्णः पाययति पयश्च गाः।
पथोऽसव्येऽस्ति गोपाल कुण्डं शैलेन्द्र-कर्णवत् ॥५॥

दोनों परिक्रमा के दाहिनी तरफ उपरोक्त चरण चिह्न के दक्षिण दिशा में जहाँ पर श्रीबलदेवजी के इङ्गित से प्रेरित होकर श्रीकृष्णके सखा गण बल पूर्वक मधु मंगल के हाथ से सूर्य नारायण का नैवेद्य लूट करते हैं, और जिस कुण्ड में सखाओं के साथ श्रीकृष्ण नित्य प्रति गौओं को जल पिवाते हैं; ऐसे श्रीगिरिराज महाराज का कर्ण-सदृश "श्रीगोपाल कुण्ड" (वर्त्तमान नाम ग्वाल पोखरा) सुशोभित है। [श्रीबलदेवजी के इङ्गित से नैवेद्य लूटने का वृत्तान्त "श्रीगोविन्द लीलामृत" ग्रन्थ में ऐसा वर्णित है, कि अपराह्न काल में सूर्य कुण्ड से सूर्य पूजनादि लीला समाप्त करके श्रीकृष्ण, सुबल व मधुमंगल के साथ श्रीगोवर्द्धन में अपने सखाओं के समीप में गमन करने से वे सखागण भी "ये मेरे सखा श्रीकृष्ण आ रहे हैं, मैं पहिले जाकर इनको छू लूँगा।" ऐसा कहते हुये सहर्ष श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करके सब ही ऐसा कहने लगे। भैया श्रीकृष्ण! हम लोग तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकें, तुम्हारे चले जाने से

हम लोग स्पष्ट रूप से तुम्हारी हृदय की कठिनता को जान कर अत्यन्त दीन व व्याकुल होकर तुम्हें ढूँढ़ने के लिये गमनोद्यत हो रहे थे; परन्तु हम लोगों के महा सौभाग्य से क्षणार्द्ध काल के बीच में ही जब तुम आ गये, तब हे प्रिय सखे ! तुम्हारी आगमन जनित प्रेम-कोमलता का हम लोग सुस्पष्ट अनुभव कर रहे हैं । कोई कहने लगा सखे ! हम लोगों को छोड़कर तुम कहाँ चले गये थे, और किसी ने तो ऐसा कहा सखे ! तुम्हें देखे विना हम तो मृत प्राय हो गये थे। ऐसे कहते हुये सखागण कृष्ण को आलिङ्गन करके उनमें से कोई कोई ग्रस्त (लुप्तवर्ण पद युक्त) वाक्य, अविस्पष्ट वाक्य, निरस्त (शीघ्र उच्चरित अथवा पराभवकारी) वाक्य, अवज्ञ (निरर्थक) वाक्य, वितथ (मिथ्या) वाक्य, सङ्गत (हृदयङ्गम) वाक्य, सुनृत (प्रिय) वाक्य द्वारा आलाप करने लगे । और कोई कोई तो सोपालम्भ (तिरस्कार) वाक्य, सोत्प्रास (ईषत् हास्य युक्त) वाक्य, व्याज स्तुति (स्तुति गर्भ निन्दा) वाक्य, परिहास युक्त गूढ़ काव्य, प्रहेली (कूटार्थ युक्त) वाक्य, चित्र काव्य, समस्या दान व समस्या पूर्त्ति इत्यादि विविध प्रकार वाक्यों के द्वारा हँसते हुये श्रीकृष्ण व श्रीबलदेवजी को हँसाने लगे । अनन्तर चोरों से धन गोपन की तरह सखाओं के पास से उत्तरीय वस्त्र में बँधे हुये नैवेद्य को छिपाते देखकर श्रीबलदेवजी मधुमंगल से पूछने लगे । हे बटो ! तुम्हारे उत्तरीय वस्त्र में बँधा हुआ यह क्या है ? बटु ने कहा—सूर्य नारायण का नैवेद्य । श्रीबलदेवजी ने कहा—कहाँ पाये ? बटु ने कहा—यजमानों के पास से । श्रीबलदेवजी ने कहा—वेयजमान कौन हैं ? बटु ने कहा—समस्त व्रजवासी, कारण आज सूर्य्य पूजन का दिन है। तब श्रीबलदेवजी ने कहा—इसमें क्या है नेक खोल के दिखाओ ? बटु ने कहा—सो नहीं, कारण तुम और तुम्हारे सखागण महा लोभी हैं।

श्रीबलदेवजी ने कहा—सखाओं को थोड़ा-थोड़ा बाँट देओ, और तुम भी खाओ, बटु ने कहा—मेरी न किसी को देने की इच्छा हैं, और न खाने की। श्रीबलदेवजी ने कहा—ये सब ग्वालबाल बलपूर्वक नैवेद्य लेना चाहते हैं। बटु ने कहा—तुम्हारे सखाओं को मैं तृण के बराबर भी नहीं समझता हूँ। कारण मैं ब्राह्मण हूँ, उसमें फिर ब्रह्मचारी. सुतरां अपनी शक्ति के द्वारा मैं तुम्हें भी तृण-तुल्य करके नहीं मानता हूँ। अनन्तर श्रीबलदेवजी के इङ्गित पाकर उन ग्वाल बालों ने विनय के साथ मधु मंगल के पास नैवेद्य प्रार्थना करने से मधु मंगल भी उसे बगल में गोपन करके मौनी हो गया तब एक सखा ने मधु मंगल के पीछे से आकर दोनों हाथों से उसकी आँखें मूँद लीं, और कई सखा आकर उसके नैवेद्य सहित उत्तरीय वस्त्र को भी छीनकर ले गये, एवं सभी मिलकर उस नैवेद्य को लूट-लूट कर खाने लगे। तब एक सखा ने पीछे की तरफ जाकर मधु मंगल की लंगोटी खोल दी और सुबल सखा ने उसके दुपट्टे से उसकी अँगूठी खोल ली। अनन्तर एक सखा उसके सामने आकर कपड़ा खींचने लगा। मधु मंगल उसको लक्ष्य करके जब दौड़ने लगे, तब किसी किसी ने उनके आस पास से आकर पगड़ी खोल दी और खुटिया भी खोल दी, और कोई उनके वेणु एवं कोई तो उनकी लठिया लेकर भागने लगा। तब मधुम ङ्गल निरुपाय होकर कभी रोदन करते हुये, और कभी जोर से हँसते हुये तथा गर्जन तर्जन करते हुये उन लोगों को तिरस्कार व अभिशाप देते हुये श्रीकृष्ण के हाथ से लठिया लेकर सबको भगाने लगे। काऊ काऊ के साथ थोड़ी देर लाठा लाठी भी होने लगी। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मधुमंगल को आलिङ्गन करके सब सखाओं को बारम्बार निवारण किया, एवं उन लोगों के पास से उत्तरीय वस्त्र, वेणु, लठिया व पगड़ी लेकर मधु मंगल को समर्पण करने से वे अपनी वस्त्र में बँधी हुई अँगूठी न देखकर क्रोध के मारे

अभिशाप देते हुये कहने लगे कि, अरे चंचल बालक गण ! तुम लोग जबरदस्ती करके मेरा नैवेद्य लूटकर खा लिये और मेरी सोने की अँगूठी भी चुरा लिये हो। अतः ब्रह्मस्व हरण निमित्त तुम लोग सर्वदा अपवित्र तथा महा पापी हो, आज से खबरदार मुझे स्पर्श न करना ! मैं अभी तुम लोगों के चरित्रों को कहने के लिये जल्दी ही व्रज में जा रहा हूँ। आज व्रजराज की सभा में विचार करके घर-घर में प्रायश्चित्त कराकर तब मैं जल ग्रहण करूँगा। ऐसा कहकर मधु मंगल के पुकारते पुकारते जल्दी से दो चार पाँव आगे चलने पर ही श्रीबलदेवजी ने उनको निवारण किया। तब मधु मंगल श्रीबलदेवजी से कहने लगे, कि यह ब्रह्मस्व हरण पाप में तुम ही प्रयोजक कर्त्ता हो अर्थात् तुमने ही आज्ञा देकर सखाओं के द्वारा मेरे द्रव्यों की चोरी करवायी है; अतः जब तक तुम इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं करोगे, तब तक तुम्हारे साथ भी मैं वाक्यालाप नहीं करूँगा। तब श्रीकृष्ण ने मधु मंगल को कपड़ा पहिराय दिये, और कहने लगे कि सखे ! सखा-सखाओं में ऐसा हुआ ही करता है। इस प्रकार ग्वाल पोखरा पर नैवेद्य लूटने का वृत्तान्त समाप्त ।]॥४।५॥

मृतानां मुक्तिदं तीर्थं मार्गेऽस्ति हरिगोकुलम् ।
यत्र कृष्णादिभिः सार्द्धं वासं नन्द श्चकार ह ॥ ६ ॥

परिक्रमा के रास्ते में मृत प्राणियों को मुक्ति देने वाला 'श्रीहरि-गोकुल' नामक एक तीर्थ है। जहाँ पर प्राचीन काल में श्रीकृष्ण आदि व्रजवासियों के साथ श्रीमन्नन्द महाराज निवास किये थे ॥ ६ ॥

प्रिय विलसति पूर्वे तस्य वै राधिकेशो
विहरति सखिभिर्यत् पार्श्वदेशे वनान्ते ।

बहुमणि चित तीर्थं चावृतं कल्पवृक्षैः
सुखद ममृतदं तत् पश्य कल्लोल कुण्डम् ॥ ७ ॥

हे प्यारे ! उस हरि गोकुल तीर्थ के पूर्व दिशा में 'किलोल कुण्ड' नामक एक कुण्ड सुशोभित है। जिसके पार्श्ववर्त्ती बनों में श्रीराधिकाजी के प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण निज सखाओं के साथ विहार करते हैं, और जिसके चारों ओर के घाट विविध प्रकार मणियों के द्वारा विनिर्मित हैं, तथा जो कुण्ड कल्पवृक्ष समूहों के द्वारा परिवेष्टित है, एवं जीवों को इहकाल में सुख तथा परकाल में मोक्ष गति को प्रदान करने वाले हैं; ऐसे किलोल कुण्ड का अवलोकन करो। [महानुभाव गण ऐसा कहते हैं, कि श्रीकिलोल विहारीजी के नाम से ही इस कुण्ड का नाम किलोल कुण्ड हो गया है। कुण्ड के निकटवर्त्ती बन का नाम खेलन बन है। यह सखाओं के साथ श्रीकृष्ण के गेंद खेलने की जगह है, जो कि गर्ग संहिता में कन्दुक क्षेत्र नाम करके प्रसिद्ध है।] ॥ ७ ॥

तद्याम्यां मुक्तिदं ह्यस्ति तीर्थं मिन्द्रध्वजं पुरा।
प्रतिवर्षं व्यधाद् यत्र नन्द इन्द्रध्वजो च्छ्रितम् ॥ ८ ॥

उस किलोल कुण्ड के दक्षिण दिशा में पास ही जीवों को मुक्ति देने वाला इन्द्रध्वज नामक एक तीर्थ सुशोभित है। जहाँ पर प्राचीन काल में श्रीमन्नन्द महाराज प्रति वर्ष इन्द्रयज्ञ की ध्वजा रोपण किया करते थे। पीछे श्रीकृष्ण के उपदेश से इन्द्र यज्ञ को छोड़ कर श्रीगोवर्द्धन की पूजा संस्थापन किये थे। इन्द्र ध्वज कुण्ड के दक्षिण दिशा में आधे मील दूर पर ही प्राचीन बम्हेरा वसति के पास लुप्त प्राय अवस्था में 'गौरोचन' नामक एक कुण्ड है।] ॥ ८ ॥

तथाहि श्रीमद्वाराह महापुराणे—

इन्द्रध्वजोच्छ्रयं यत्र पूर्वस्यां दिशि वै कृतम् ।
इन्द्रध्वजमिति ख्यातं तीर्थञ्चैवाति मुक्तिदम् ।
तत्र स्नात्वादिवं यान्ति ये मृता स्तेऽपुनर्भवाः ॥९॥

श्रीगोवर्द्धन ग्राम के पूर्व दिशा में जहाँ श्रीनन्द महाराज ने इन्द्र यज्ञ की ध्वजा रोपण की थी, आत्यन्तिकी मुक्ति देने वाले वह तीर्थ इन्द्रध्वज नाम से प्रसिद्ध है। उस तीर्थ में स्नान करने वाले मनुष्य गण स्वर्गलोक को गमन करते हैं, और जो लोग वहाँ पर देह त्याग करते हैं, उन लोगों को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता है. वे निर्माण मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥

अस्त्येव पञ्चतीर्थाख्यं कुण्डं मार्गस्य दक्षिणे ।
रत्नाचित चतुस्तीर्थं पञ्चतीर्थं फलप्रदम् ॥ १० ॥

परिक्रमा के दाहिनी ओर पञ्चतीर्थ नामक एक कुण्ड है। जिसके चारों ओर के घाट रत्नों के द्वारा बँधे हुए हैं। जो कुण्ड अपने में स्नान करने वालों को कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, प्रभास, व पुष्कर्राज इन पञ्चतीर्थों के फल को प्रदान करता है ॥ १० ॥

गङ्गान्तः शैल मौलीव न्मुकुटाख्य शिलास्ति या ।
दर्शनात् सेवना त्तस्या देव मौलि र्भवेन्नरः ॥ ११ ॥

उस पंचतीर्थ कुण्ड के दक्षिण दिशा में श्रीमानसी गङ्गा के बीच में श्रीगिरिराजजी के मुकुट सदृश जो श्रीकृष्ण मुकुट के चिन्ह युक्त मुकुट शिला विराजमान है। उस शिला के दर्शन से तथा पूजा सेवा करने से मनुष्य देवताओं के भी मुकुट तुल्य पूजनीय हो जाते हैं ॥ ११ ॥

गोवर्द्धनेऽस्ति यत्रैव दोला लीला स्थली हरेः।
चक्रतीर्थं नरो दृष्ट्वा भुक्तिं मुक्तिं लभेतवै ॥ १२ ॥

श्रीगोवर्द्धन में जहाँ पर श्रीकृष्ण की दोला लीला स्थली है, वहाँ पर चक्रतीर्थ नामक एक तीर्थ विराजमान है। जिसके दर्शन कर के मनुष्य भुक्ति अर्थात् स्वर्गादि फल भोग एवं पञ्च प्रकार मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

चक्रेश्वर महादेव स्तत्रैव दिव्य मन्दिरे।
राजते स्वगणैः सार्द्धं जगन्मंगल हेतवे ॥ १३ ॥

उस चक्रतीर्थ में ही जगज्जीवों को मङ्गल करने के लिये श्री-पार्वती, कार्त्तिक, गणेश, नन्दिकेश्वर इत्यादि निज परिकरों के साथ श्रीचक्रेश्वर महादेवजी मनोहर मन्दिर में विराजमान हैं ॥ १३ ॥

तदग्र मन्दिरे गौर-नित्यानन्दौ विराजतः।
ययो र्दर्शन मात्रेण प्रेमाब्धौ मज्जते सुधीः ॥ १४ ॥

उन महादेवजी के सामने ही कलियुग-पावनावतार श्री श्री-गौराङ्ग महाप्रभु एवं श्री श्रीनित्यानन्द प्रभु दिव्य मन्दिर में विराजमान हैं। जिनके दर्शन मात्र से ही सुबुद्धिमान जन अर्थात् निरपराध चित्त वाले मनुष्य तत्क्षणात् प्रेमानन्द-समुद्र में निमज्जित हो जाते हैं। [श्रीमन्महाप्रभुजी के मन्दिर के सामने पास ही श्रीगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य्य वर्य्य श्रीपाद सनातन गोस्वामी जी की भजन कुटी है। यहाँ पर श्रीगोस्वामीजी निवास करते हुए नित्य प्रति श्रीगिरिराजजी की बारह कोस की परिक्रमा लगाया करते थे। उनको वृद्धावस्था में परिक्रमा करते हुए महापरिश्रान्त देख कर श्रीकृष्णचन्द्र एक गोप बालक के रूप में साक्षात् दर्शन

देकर श्रीगोस्वामीजी के श्री अंग का पसीना पोंछते हुए अश्रुयुक्त होकर मधुर बचन से कहने लगे, कि हे स्वामीजी! आप बहुत वृद्ध हो गए हो, अब इतना परिश्रम नहीं कर सकोगे, इससे मेरी बात सुनो। तब श्रीगोस्वामीजी ने कहा कि अच्छा बोलो? सुनते ही वह गोप बालक श्रीगोवर्द्धन पर चढ़गये, और अपने चरण चिह्न युक्त शिला लाकर उनके सामने रखदो और कहने लगे कि हे स्वामीजी! आप आज से इस शिला की परिक्रमा कर लिया करो, इससे आपकी बारह कोस की परिक्रमा सिद्ध हो जायगी। ऐसा कहकर वे उस शिला को लाए और श्रीगोस्वामीजी की कुटी में रख कर अकस्मात् अन्तर्द्धान हो गए। तब उनके बिना देखे श्री गोस्वामीजी अत्यन्त व्याकुल हुए और रोने लगे। तब श्रीकृष्ण ने अत्यन्त स्नेह परवश होकर अदृश्य भाव में अपना परिचय प्रदान किया। सुन करके श्रीगोस्वामीजी नेत्र जल से अभिषिक्त होते हुए विविध प्रकार अनुताप करके अतिकष्ट से धैर्य अवलम्बन किये। तदनन्तर नित्य प्रति उस चरण चिह्न युक्त शिला की पूजा व परिक्रमा किया करते थे। वर्त्तमान में वह शिला श्रीवृन्दावनस्थ श्री श्रीराधा दामोदरजी के मन्दिर में विराजमान है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन सभी के लिये उस शिला का स्वच्छन्द रूप से दर्शन होता है। उस भजन कुटी के पीछे श्रीपाद वल्लभाचार्य महाप्रभुजी की बैठक के दर्शन हैं।]॥ १४॥

जयति जयति नित्यानन्द-गौराङ्ग देवः
कलि कलुष लवित्री मानसी जाह्नवी च।
जयति स हरिदेवो दिव्य लीला विलासी
जयनि मुकुट चिह्नै राजितः शैलराजः॥१५॥

श्री श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी व श्री श्रीनित्यानन्द प्रभुजी

सर्वोत्कर्ष से जययुक्त हो रहे हैं, और कलियुग के कल्मषों का छेदन करने वाली श्रीमानसीगङ्गाजी भी सर्वोत्कर्ष से जययुक्त हो रही हैं, एवं मनोहर लीला रसास्वादन परायण प्रसिद्ध श्रीहरिदेवजी सर्वोत्कर्ष से जययुक्त हो रहे हैं, तथा मुकुट चिह्न के द्वारा सुशोभित श्रीगिरिराज महाराज भी सदैव सर्वोत्कर्ष से जययुक्त हो रहे हैं ॥१५॥

शैलेन्द्रं त्रिःपरिक्रम्य नत्वा च कीर्त्तयन् हरिम्।
रात्र्यां जागरणं प्रातर्गङ्गा स्नानं च पूजनम् ॥१६॥
कृत्वा च साधु-विप्रेभ्यो दत्त्वा भोज्यं सदक्षिणम्।
मुच्यते सर्वपापाद्धि सर्वार्थं लभते नरः ॥१७॥

युग्मकम्।

जो श्रीहरिनाम संकीर्त्तन करते-करते श्रीगिरिराज महाराज की तीन परिक्रमा देकर तीन बार दण्डवत् प्रणाम करके रात्रि को जागरण करता है, और प्रातःकाल श्रीमानसी गङ्गा में स्नान कर श्रीगिरिराजजी का पूजन करके तीर्थवासी साधुओं को तथा व्रजवासी ब्राह्मणों को दक्षिणा के साथ भोजन प्रदान करता है; वह मनुष्य निश्चय करके समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है, और निःसन्देह सर्व प्रकार पुरुषार्थों का लाभ करता है ॥१६।१७॥

शक्तौ सत्यां गिरीन्द्रस्य कुर्याद् यस्त्रिः प्रदक्षिणाम्।
साष्टाङ्गेन प्रणामेन सहितां विधिवत् सुधीः ॥१८॥
शीघ्रं स प्रेमभक्तिं हि निष्कामी यदि वेतरः।
फलं दशाश्वमेधस्य स्वामीष्टं चाप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१९॥

युग्मकम् ॥

शारीरिक शक्ति सम्पन्न जो सुबुद्धिमान मनुष्य विधि पूर्वक श्रीगिरिराज महाराज को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम के साथ लगातार तीन बार प्रदक्षिणा करता है; सो यदि निष्कामी हो, तो अति शीघ्र ही प्रेम-लक्षणा भक्ति को लाभ करता है, अथवा यदि सकामी हो, तो निश्चय करके दश अश्वमेध यज्ञों के फल को तथा अपनी यावतीय अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त होता है ॥१८।१९॥

तथाहिश्रीहरिभक्ति विलास धृत-वराह पुराणे—

ततः प्रदक्षिणां कुर्य्याद् भक्त्या भगवतो हरेः।
नामानि कीर्त्तयन् शक्तौ ताश्च साष्टाङ्ग वन्दनाम् ॥२०॥
यस्त्रिः प्रदक्षिणं कुर्य्यात् साष्टांगक प्रणामकम्।
दशाश्वमेधस्य फलं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥२१॥

तदनन्तर श्रीहरि के नामावली को कीर्त्तन करते-करते भक्ति पूर्वक भगवान् की प्रदक्षिणा करनी चाहिये, और यदि सामर्थ्य हो, तो साष्टांग प्रणाम के साथ प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो मनुष्य साष्टाँग प्रणाम के साथ तीन बार प्रदक्षिणा करता है, सो दश अश्वमेध यज्ञों के फल को प्राप्त होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२०।२१॥

द्वादश्यां प्रतिमासि शैलशिखरे देवैर्हि दीपालयो
दीयन्ते यदि कोऽपि पश्यति स ताः सिद्धिं लभेतोत्तमाम्।
दत्त्वापिण्डमहो नरा गिरिवरे श्रीसोमवारे त्वमा—
वस्यायां फल माप्नुयुः पितृगणेभ्यो राजसूयस्यवै ॥२२॥

प्रत्येक मास में द्वादशी के दिन अर्थात् संवत्सरान्तर्गत चौबीस द्वादशी में श्रीगोवर्द्धन-पर्वत के शिखर पर देवतागण

दीपावली प्रदान करते हैं। अहो ! यदि कोई भाग्यवान् उन दीपावली को दर्शन कर लें, तो वे निश्चय करके सर्वोत्तमा सिद्धि का लाभ करते हैं, और श्रीसोमवती अमावस्या के दिन श्रीगोवर्द्धन की तरहटी में पितृगणों को पिण्डदान करके मनुष्य-गण निःसन्देह राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं ॥२२॥

द्रवति गिरिवरांगे कृष्ण-वंशी निनादै-
र्दिशि दिशि विसरद्भि श्चिद्रसौघैः प्रपूर्णाः ।
जलज कुसुम वृन्दैः शोभिता भृंगजुष्टै-
र्गिरिवर तटदेशेऽनेक तीर्थाश्च सन्ति ॥२३॥

श्रीगिरिराजजी की तरहटी में श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि द्वारा श्रीगिरिराजजी के श्रीअङ्ग द्रवीभूत होकर चारों ओर प्रवाहित चिन्मय जल समूह के द्वारा जो परिपूर्ण हो रहे हैं, एवं भ्रमरों की पंक्तियाँ जिनमें गुञ्जार कर रही हैं; ऐसे जलजात कमल व कुमुदादि विविध पुष्पों के द्वारा सुशोभित बहुत से तीर्थ विराजमान हैं ॥२३॥

शास्त्रोक्ता बहव स्तीर्था विलुप्ता गिरिसन्निधौ ।
तेषां चिह्नाद्यभावान्नो ग्रन्थेऽस्मिन् वर्णिता मया ॥२४॥

श्रीगिरिराजजी के आस-पास में शास्त्रोक्त इन्द्रतीर्थ, यम-तीर्थ, वरुणतीर्थ, कुवेरतीर्थ, विबुधारि कुण्ड, ज्योत्स्ना मोक्षण कुण्ड, उष्णीष तीर्थ व लौकिक तीर्थ इत्यादिक बहुत से तीर्थ जो विशेष रूप से लुप्त हो गये हैं, उनके कोई चिह्न चक्रादिक न न मिलने के कारण मैंने उन तीर्थों का वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं किया है ॥२४॥

जात भावेषु सिद्धेषु लीला परिकरेषु च ।
प्रेमनेत्रेषु नान्येषु सर्वमित्थं चकास्ति हि ॥२५॥

श्रीगिरिराजजी का एवं तरहटी स्थित कुण्ड व कुण्डादिकों का स्वरूप इस ग्रन्थ में जैसा वर्णन किया गया है, वे स्वरूप जिन लोगों के हृदय में भजन करते-करते भाव उत्पन्न हो गया है, तथा जो साधन करते-करते सिद्ध हो गये हैं, और जो श्रीभगवान् के नित्यलीला के परिकर हैं, एवं जिनके नेत्र प्रेममय हो गये हैं, केवल उन्हीं लोगों के नेत्रों में ही यथा वर्णित समस्त भासता है। तद्भिन्न विषय दूषित प्राकृत नेत्रों में कदापि किसी को नहीं भासता। इस विषय में "तेजोमय मिद रम्य मदृश्यं चर्मचक्षुषा ।" (गौतमीय तन्त्रे श्रीकृष्णवाक्यम्।) इत्यादि प्रमाण नाना शास्त्रों में वर्णित हैं। परन्तु श्री भगवान् की कृपा हो, तो औरों को भी कभी-कभी ऐसा दर्शन होना असम्भव नहीं है ॥२५॥

य इद मनु शृणोति प्रत्यहं शैलतीर्था-
मृत मधुर महत्त्वं धन्य मायुष्य मर्घ्यम् ।
पठति च लभते सर्वाशिषः स्वात्मनो द्राक्
क्वचन न तु परस्मात् किञ्चनापेक्षते सः ॥२६॥

श्रीगोवर्द्धन-स्थित तीर्थों के अमृत से भी सुमधुर माहात्म्य का जो प्रतिदिन पाठ करेंगे, तथा श्रवण करेंगे, वे अति शीघ्र सर्व प्रकार मंगलों को स्वतः ही प्राप्त कर सकेंगे। उनको और कोई अभीष्ट वस्तु कहीं भी किसी दूसरे के पास से लेने की आवश्यकता न होगी; अर्थात् इसी के प्रभाव से निःसन्देह सर्व प्रकार की अभीष्ट वस्तु का लाभ हो जायगा ॥२६॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्रीगिरिराज-तीर्थ वर्णनं
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥

नुमस्त्वां सगोत्रं मुकुन्दात्म गोत्रं
कृत प्रीति गोत्रं नतत्राण गोत्रम् ।
प्रभो ! द्रोणवांर सक्रोपेन्द्र वारं
विनिर्धूत वारं व्रजस्थाधि वारम् ॥१॥

हे प्रभो ! आप श्रीकृष्णचन्द्र के अभिन्न स्वरूप हैं, और आपके श्रीचरणों में प्रीति रखने वाले व्रजवासियों के गौओं की आप रक्षा करते हैं । आप निज शरणागतजनों को समस्त दुःखों से त्राण करने वाले हैं, और आपने यज्ञ भंग के कारण प्रकुपित हुए देवराज इन्द्र को पराजित किया है, तथा इन्द्र प्रेरित मेघमालाओं के वारिवर्षण निवृत्ति पूर्वक अपार जल राशि का शोषण कर आप निज निवास स्थान श्रीव्रज भूमि की रक्षा व व्रजवासिओं का मनस्ताप निवारण किये हैं, ऐसे परिकर सहित हे श्रीद्रोणाचल नन्दन श्रीगिरिराज महाराज ! हम आपके श्रीचरण कमलों में बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥१॥

कथित मिति मुनीन्द्रैः शाल्मली द्वीप मध्येऽऽ-
यमजनि गिरिराजो द्रोण गोत्रस्य पत्न्याम् ।
स इह भरत खण्डे श्रीपुलस्त्येन नीतोऽ-
स्य खलु हरिवदेवानन्त लीलाश्च सन्ति ॥२॥

मुनिश्रेष्ठों ने ऐसा कहा है कि, ये श्रीगिरिराज महाराज भारत वर्ष के पश्चिम दिशा में शाल्मली द्वीप के बीच में अवस्थित श्रीद्रोण पर्वत की पत्नी के गर्भ से जन्म लिये हैं, और भारत खण्ड के अन्तर्गत इस मथुरा मण्डल में श्रीपुलस्त्यजी इनको लाये हैं। जैसे श्रीभगवान् की अनन्त प्रकार लीला हैं, तैसे ही श्रीगिरराजजी की भी अनन्त प्रकार की लीला हैं। [श्रीगिरिराज जी का जन्मादि वृत्तान्त "गर्ग संहिता" में ऐसा वर्णित है कि, श्रीभगवान् की प्रेरणा से श्रीगिरिराज महाराज भारतवर्ष के पश्चिम दिग्भाग में शाल्मली द्वीपान्तर्गत श्रीद्रोणाचल की पत्नी के गर्भ से जन्म ग्रहण करने पर देवतागण परमान्दित होकर उनके ऊपर पुष्प वृष्टि करने लगे, एवं हिमालय व सुमेरु प्रभृति पर्वत समूह वहाँ पर आगमन कर यथाविधि श्रीगिरिराजजी की पूजा, प्रमाण व प्रदक्षिणा करके उत्तम रूप से नाना प्रकार की स्तुति करने लगे। एक समय मुनिश्रेष्ठ श्रीपुलस्त्यजी तीर्थ भ्रमण करते हुये शाल्मली द्वीप में जाकर मनोहर माधुर्य मण्डित श्रीद्रोणाचल नन्दन श्रीमद्गोवर्द्धन के दर्शन किये। दर्शन करते ही लुब्ध चित्त होकर श्रीगोवर्द्धन की प्राप्ति कामनामे श्रीद्रोणाचल के पास पहुँचे। श्रीद्रोणाचल ने श्रीपुलस्त्यजी को देखकर यथायोग्य पूजन व सम्मान किया। तदनन्तर श्रीपुलस्त्यजी द्रोणाचल से कहने लगे कि हे द्रोण ! तुम पर्वतों में सर्वश्रेष्ठ हो और समस्त देवताओं से पूजित हो, एवं नाना प्रकार दिव्य औषधियों से संयुक्त हो, तथा सदा सर्वदा मनुष्यों को जीवन प्रदान करते हो। मैं एक काशीवासी महामुनि हूँ, और तुम्हारे पास प्रार्थी रूप में उपस्थित हुआ हूँ। मेरा अन्य किसी वस्तु से प्रयोजन नहीं है, मुझे तुम अपने पुत्र गोवर्द्धन को दे दो। देवदेव विश्वेश्वर की जो काशी नाम्नी महापुरी है, वहाँ किसी पापी का भी प्राणान्त होय तो वह तत्क्षणात् परम मोक्ष को प्राप्त होता है। जहाँ श्रीगङ्गाजी हैं,

व साक्षात् विश्वेश्वर विराजमान हैं। पर वहाँ पर कोई पर्वत नहीं है, इसलिये मैं तुम्हारे पुत्र श्रीगोवर्द्धन को वहाँ पर स्थापन करूँगा, और वृक्षलता समाकुल गोवर्द्धन की कन्दरा में बैठ कर तपस्या करूँगा, यही मेरे मन में वासना उत्पन्न हुई है। श्रीपुलस्त्यजी की बात सुन कर पुत्र स्नेह विह्वल श्रीद्रोणाचल नयनाश्रुजल के द्वारा मुखमण्डल प्लावित करते हुए श्रीपुलस्त्यजी से कहने लगे, कि हे मुनि श्रेष्ठ! मैं पुत्र स्नेह से अतिशय विह्वल हूँ, एवं यह पुत्र मेरा अतीव प्रिय है, तौ भी मैं आपके अभिसम्पात के भय से भीत होकर पुत्र से आपका अभिप्राय कहता हूँ। ऐसा कह कर श्रीद्रोणाचल श्रीगोवर्द्धन से कहने लगे, कि हे पुत्र! भारतवर्ष पुण्यभूमि एवं कर्मक्षेत्र है, वहाँ पर मानवगण त्रिवर्ग तथा सद्य मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं, अतः तुम इन मुनि के साथ भारत में जाओ तब पिताजी के आदेश वाक्य श्रवण करके श्रीगोवर्द्धन श्रीपुलस्त्यजी से बोले, कि हे मुने! मेरी लम्बाई आठ योजन व चौड़ाई पाँच योजन तथा ऊँचाई दो योजन है, आप मेरे इस विशाल स्वरूप को अन्यत्र कैसे ले जाओगे। श्रीगोवर्द्धन के बचन सुन कर श्रीपुलस्त्यजी कहने लगे, कि हे पुत्र! मेरे हाथ पर बैठ कर तुम आनन्द में चले चोल, मैं तुम्हें हाथ पर बैठा कर काशी पुरी तक ले जाऊँगा। श्रीपुलस्त्यजी की ऐसी बात सुन कर श्रीगोवर्द्धन बोले, कि हे मुने! मुझको ले जाते समय रास्ते में बोझ मालूम होने से आप मुझको जहाँ रख देंगे, मैं वहाँ ही रह जाऊँगा, वहाँ से फिर नहीं उठूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा रही। श्रीगोवर्द्धन के बचन सुन कर श्रीपुलस्त्यजी बड़े आग्रह एवं गर्व के साथ कहने लगे, कि मैं इस शाल्मली द्वीप में कोशल देश पर्यन्त रास्ते में कहीं भी तुम्हें नहीं उतारूँगा, मेरी भी यही प्रतिज्ञा रही। तब श्रीगोवर्द्धन अपने माता पिता के चरणों में प्रणाम करके अश्रु मोचन करते हुए मुनि

की हथेली पर बैठ गये, और श्रीपुलस्त्यजी भी मानवों को अपना तेज प्रदर्शन कराते हुए उनको दक्षिणहस्त पर धारण करके धीरे-धीरे व्रजमण्डल में आ पहुँचे। जातिस्मर श्रीगोवर्द्धन रास्ते में चिन्ता करते हुये मन-मन में ऐसा कहने लगे, कि असंख्य ब्रह्माण्डपति परिपूर्णतम साक्षात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इस व्रज में अवतीर्ण होंगे; और यहाँ पर ग्वालबालों के साथ विविध प्रकार बाललीला, कैशोरलीला, दानलीला व मानलीला इत्यादिक करेंगे, अतएव यह यमुनातीर स्थित परम पावन व्रज भूमि को मैं कदापि नहीं छोड़ूँगा। श्रीकृष्ण श्रीराधिकाजी के साथ गोलोक से जब यहाँ पर आगमन करेंगे, तब मैं उन लोगों के दर्शन करके कृतकृत्य हो जाऊँगा। श्रीगोवर्द्धन मन-मनमें ऐसा विचार कर श्रीपुलस्त्यजी के हाथ पर ज्यादा बोझ बढ़ाने लगे। तब श्रीपुलस्त्य जी परिश्रान्त होकर बोझ के मारे घबड़ाते हुये पूर्व प्रतिज्ञा से विस्मृत होकर श्रीगोवर्द्धन को हाथ से उतार कर व्रज मण्डल में स्थापन पूर्वक निःशङ्क होकर शौच व जपादिक क्रिया करने के लिये गये। शौचादिक क्रिया से निवृत्त होकर स्नान, ध्यान व जपादि समाप्त करके फिर श्रीगोवर्द्धन के पास आये और कहने लगे, कि हे वत्स गोवर्द्धन ! उठो पूर्ववत् मेरे हाथ पर बैठ जाओ, परन्तु श्रीगिरिराजजी नहीं उठे। तब महामुनि पुलस्त्यजी अपने तेज बल से भूरिभार युक्त श्रीगोवर्द्धन को दोनों हाथों से उठाने की चेष्टा करने लगे, परन्तु श्रीगिरिराजजी उनके विनीत बचन से एक अंगुल मात्र भी विचलित नहीं हुये। तब श्रीपुलस्त्यजी कहने लगे, कि हे गिरिराज ! उठो उठो वृथा बोझ मत बढ़ाओ, मैं समझ गया हूँ कि तुम रुष्ट हो गये हो, अब तुम अपना अभिप्राय मेरे पास प्रकाश करके कहो। ऐसी बात सुन कर श्रीगिरिराजजी बोले, कि हे मुने ! इसमें मेरा तो कोई भी दोष नहीं, आपने मुझको यहाँ रख दिया है; मुझे जहाँ रख दोगे वहाँ से फिर नहीं उठूँगा, यह

तो मैं पहिले ही प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। श्रीगिरिराजजी के ऐसे बचन सुन कर उद्यम विफल होने के कारण मुनि श्रेष्ठ श्रीपुलस्त्य जी के सर्वेन्द्रिय क्रोध के मारे विचलित हो गये, वे अधरोष्ठ प्रकम्पित करके श्रीद्रोणाचल नन्दन श्रीगोवर्द्धन को शाप देने लगे, कि हे गोवर्द्धन! तुमने अत्यन्त धृष्टता प्रकाश करके मेरे मनोरथ पूर्ण होने में विघ्न पहुँचाया है; अतएव तुम आज से नित्यप्रति तिल-तिल भर क्षीण होते जाओगे। ऐसा कहकर श्रीपुलस्त्यजी भग्न मनोरथ होकर काशीजी की तरफ चल दिये और ये श्रीगोवर्द्धन पर्वत भी उस दिन से लेकर प्रतिदिन एक-एक तिल करके क्षीण होते जा रहे हैं। इस प्रकार श्रीगिरिराज महाराज का जन्मादि वृत्तान्त समाप्त।]॥ २॥

केचिद् वदन्ति गिरिजा–गल रत्न माला
प्रेम्णो वशा न्निपतितैव सुरर्षि हस्तात्।
दैर्घ्ये च योजनयुगं द्विगुणं तदुच्चे
प्रस्थे च योजन मभूद् गिरिराज रूपम्॥ ३॥

कोई कोई ऐसा कहते हैं, कि श्रीपार्वतीजी के कण्ठ की रत्न माला ही प्रेमानन्द में विवश श्रीनारदजी के हाथ से धरती में गिरकर आठ कोस लम्बी व सोलह कोस ऊँची, और चार कोस चौड़ी श्रीगिरिराजजी का स्वरूप हो गई। [इसके सम्बन्ध में विस्तारित विवरण श्रीमहेश्वर तन्त्र में वर्णित है।]॥ ३॥

विज्ञा वदन्ति राधानुराग स्याङ्कुर मेव हि।
सन्तं शैलेन्द्र रूपेण हृदया न्निर्गतं हरेः॥ ४॥

कोई कोई विशेषज्ञ मुनिगण ऐसा कहते हैं, कि श्रीराधिकाजी के सम्बन्ध में जो हार्दिक अनुराग है, वह अनुराग का अंकुर ही

श्रीकृष्णचन्द्र के हृदय से नेत्र द्वारा निर्गत होकर श्रीगिरिराज रूप में विराजमान हैं ॥ ४ ॥

नयातो हि कुतश्चन क्वचन नो गन्ता गिरीन्द्र स्त्वयं
श्रीवृन्दावन धाम्नि विश्व महितेऽनाद्यन्त कालं स्थितः ।
यातायात कथाऽस्ति या च लिखिता शास्त्रान्तरे मन्मतं
सा कल्पान्तर–कल्पिता किल विशन्त्यंशायथै वांशिनि॥५॥

ये श्रीगिरिराज महाराज वास्तव में कभी कहीं से आये भी नहीं, और किसी कारण से कभी कहीं गये भी नहीं हैं । ये तो विश्व पूजित श्रीधाम वृन्दावन में अनादि अनन्त काल यावत् अवस्थित हैं । इनकी अन्यत्र गमनागमन की कथा जो कहीं कहीं शास्त्रान्तर में उल्लिखित है, वे सब निश्चित कल्पान्तर भेद की सम्पादित लीला कथा हैं । जैसे अंशी में अंश समूह आकर प्रवेश करते हैं तैसे ही निखिल पर्वतों के अंशी स्वरूप इन श्रीगिरिराज महाराज के अंश स्थानीय अन्यान्य गिरिराज समूह भी जगदुद्धार के लिये अन्यत्र प्रकटित होकर यथा समय स्वयं श्रीगिरिराजजी में आकर सम्मिलित होते हैं; मेरे मत में ऐसा ही समीचीन है॥५॥

तीर्थेषु प्रवरो हरे स्तनुरयं त्रैलोक्य–संरक्षको
गोलोकस्य शिरोमणि र्गिरिकुलै राराध्य पादाम्बुजः ।
भङ्क्त्वा शक्रमखं स्वयं भगवता व्यस्तारि यत्पूजनं
माहात्म्यं त्वपि तद्विवक्तु मभवन् शक्ता न शर्वादयः॥६॥

ये श्रीगिरिराज महाराज समस्त तीर्थों के बीच में सर्व श्रेष्ठ एवं साक्षात् श्रीभगवान् के स्वरूप हैं, और स्वर्ग-मर्त्य-पाताल इन तीनों लोक की सम्यक् रूप से रक्षा करने वाले व श्रीगोलोक के मुकुट मणि हैं । अन्यान्य पर्वत समूह जिनके चरण कमलों की

आराधना करते हैं, तथा स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्र-यज्ञ को भङ्ग कर जिनके पूजन का विस्तार किये हैं; ऐसे श्रीगिरिराजजी के अपार माहात्म्य को क्या मनुष्य वर्णन कर सकता है ? श्रीशङ्करादिक देवतागण भी वर्णन करने में समर्थ नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

निराश्रय जनाश्रयो निखिल विघ्न विध्वंसको
महा पतित पावनः सकल चित्त विद्रावकः ।
पितेव जन पालकः सहरि--राधिकातिप्रियः
सदा जयति तीर्थराट् सुमहिमाब्धि-गोवर्द्धनः॥ ७ ॥

जो निराश्रय जनों के एकमात्र आश्रय, एवं महापतित जनों के पावन करने वाले हैं, और निखिल विघ्नों को विनाश करने वाले व सब के चित्तों को विशेष रूप से द्रव करने वाले हैं, तथा पिता के सदृश सब लोगों को पालन करने वाले, एवं श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधिकाजी को अतिशय प्रिय हैं; ऐसे समस्त तीर्थों के राजा व महा-महिमा के समुद्र स्वरूप श्रीगिरिराज महाराज सदैव सर्वोत्कर्ष में जययुक्त हो रहे हैं ॥७॥

ललना कुल मौलिमणे, यद्धरिदासवर्य्योऽमित्युक्तिः ।
सेवोत्कर्षं दृष्ट्वा, तद्धुद्धव-युधिष्ठिरा द्यपेक्षया ॥८॥

वृजललना-कुल मुकुट मणि श्रीवृषभानुनन्दिनी की "हन्ताय मद्रि रबला हरिदास वर्य्यो" अर्थात् हे सखिगण देखो ! यह श्रीगोवर्द्धन पर्वत श्रीहरिदासों के बीच में सर्वश्रेष्ठ है, इस प्रकार जो उक्ति है; सो निश्चय करके श्रीउद्धव एवं श्रीयुधिष्ठिरादि की अपेक्षा श्रीगिरिराज महाराजजी की श्रीकृष्ण-सेवा विषय में उत्कर्षता को देख करके ही, ऐसा समझ लेना चाहिये ॥८॥

सदात्रहि गिरीन्द्रराड् जयति तात सोऽयं व्रजे
यतो हरि-पदाम्बुजे मति रनङ्कुशे मज्जति ।
परन्तु यदि तत्स्थित स्थिरचरेषु देहादिभि-
र्न किञ्चि दपराधिता भवति सर्वनाशंकरी ॥९॥

हे प्रियसखे यह देखिये ! इस व्रजमण्डल में सर्वदा समस्त गिरि श्रेष्ठों के सम्राट् सोई प्रसिद्ध श्रीगिरिराज महाराज सर्वोत्कर्ष से जययुक्त हो रहे हैं। जहाँ पर सर्व दुःखहारी श्रीहरिचरणारविन्दों के मकरन्दों में सर्व बाधा विघ्न रहित होकर मन-मधुप अपने आप ही डूब जाता है। परन्तु यदि श्रीगिरिराज-निवासी स्थावर-जंगमों के पास काय-मन-बचन के द्वारा किञ्चिन्मात्र भी अपराध न हो, तो श्रीहरिपादपद्मों में मन अपने आप ही लग जाता है; कारण उन लोगों के पास अपराध तो महान् सर्वनाशकारी होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥९॥

सुरतरुरिवा श्रितानां, निखिलाघहर एष नतानाम् ।
सच्चिदानन्द मूर्त्ति,–र्जयति व्रजमौलि–गिरिराजः ॥१०॥

जो निज चरणाश्रित जनों के लिये कल्पवृक्ष सदृश हैं, और प्रणत जनों के लिये निखिल पापों के नाश करने वाले हैं, एवं जिनकी श्रीमूर्त्ति सच्चिदानन्दमयी है; ऐसे श्रीव्रजमण्डल के मुकुटमणि स्वरूप यह श्रीगिरिराज महाराज सर्वोत्कर्ष से जययुक्त हो रहे हैं ॥१०॥

यथोलूक स्तेना स्तिमिर हरणं भास्करकरं
विनिन्दन्ति क्रोधा द्द्विज–मुनि समूहैः सुमहितम् ।
तथा केचिन्माया कलित मतिमूढ़ा इह कलौ
न मन्यन्ते दृष्ट्वा गिरिनृप–महत्त्वं निरुपमम् ॥११॥

जैसे उलूक और डाकू लोग, ब्राह्मण व मुनि समूह के द्वारा सादर आराधित अन्धकार को हरण करने वाले सूर्य किरणों को क्रोध के मारे विशेष रूप से निन्दा करते हैं, तैसे ही कोई-कोई गुणमयी माया-मुग्ध मूढ़-मति-जन इस कलियुग में श्रीगिरि-राजजी को उपमा रहित महामहिमा को प्रत्यक्ष देख करके भी नहीं मानते हैं ॥११॥

कलि-कवलिता स्तेहि मन्दभाग्याः कुबुद्धयः ।
ये गोवर्द्धन माश्रित्य राधाकृष्णौ भजन्ति न ॥१२॥

जो मनुष्य श्रीगिरिराजजी का आश्रय ग्रहण करके श्री श्रीराधाकृष्ण का भजन नहीं करते हैं, वे निश्चय करके मन्द-भाग्य एवं मलीन बुद्धि वाले हैं, तथा कलि काल के द्वारा उनकी बुद्धि ग्रसित अर्थात् भ्रष्ट होगई है; ऐसा समझ लेना चाहिये॥१२॥

किं शोचन मतःपरं महा विस्मय कारणम् ।
गोवर्द्धने स्थितोऽपि श्रीराधाकृष्णौ भजेन्न यत् ॥१३॥

इससे और अधिक शोक का विषय क्या है, एवं इससे महान् विस्मय का कारण और क्या है, जो कि श्रीगोवर्द्धन में वास करते हुए भी श्री श्रीराधाकृष्ण का भजन नहीं करते हैं ॥१३॥

कामादीना मधीनेषु प्रतिष्ठार्थिष्वसत्सु च ।
गिरिराज-कृपालेशात् कृष्णप्राप्ति र्न दुर्लभा ॥१४॥

जो लोग काम, क्रोधादिक रिपुओं के आधीन, एवं प्रतिष्ठा के अभिलाषी तथा असाधु हैं, उन लोगों के लिये भी श्रीगिरि-राज महाराज की कृपा-लेश से श्रीकृष्ण के पादपद्म की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है ॥१४॥

संत्यज्य गोवर्द्धन मिन्दिरादिभि–
र्यद् दुर्लभं गच्छसि कुत्र हे सखे।
मा याहि भक्तिं ह्यपवर्ग मैशिकं
प्राप्नोति कृष्णं च गिरीन्द्र वासतः ॥१५॥

हे सखे! श्रीलक्ष्मी आदिकों को जो दुर्लभ श्रीगिरिराजजी हैं, उनको छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो? अन्यत्र कहीं भी मत जाओ। क्योंकि श्रीगिरिराज-वास के प्रभाव से अत्रस्थ अधिवासियों के लिये इच्छानुसार भक्ति, मुक्ति एवं ईश्वर-सम्बन्धीय ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य व तेज इत्यादिक मिल जाते हैं, तथा साक्षात् श्रीकृष्ण पर्यन्त भी मिल जाते हैं ॥१५॥

उष्ट्रा यथाम्र मुकुलानि विहाय साक्षात्
खादन्ति कण्टकयुतां कुलतां हि तद्वत्।
गोवर्द्धनं निखिल वाञ्छितदं च केचि–
त्त्यक्त्वा प्रयान्त्य परदेश मभाग्यवत्त्वात् ॥१६॥

जैसे ऊँट आँखों के सामने आम्र मुकुलों को छोड़कर काँटे वाली लताओं को खाते हैं, तैसे ही कोई-कोई निज दुर्भाग्य के प्रभाव से निखिल वाञ्छित फल को देने वाले श्रीगिरिराजजी को छोड़कर अन्य देश में गमन करते हैं, अर्थात् देशान्तर में जाकर निवास करते हैं ॥१६॥

भ्रमणं यद्व्रजस्थानां जगदुद्धार हेतवे।
तनितुं व्रजमाहात्म्यं कृपया वेश्वरेच्छया ॥१७॥

परन्तु व्रजवासियों का जो देशान्तर में भ्रमण है, वह जगज्जीवों के उद्धार के लिये लीला ही है, अथवा कृपा करके

श्री व्रजभूमि के महामाहात्म्य को सब जगत् में विस्तार करने के लिये है, या श्रीभगवान् की इच्छा से ही होता है, ऐसा समझ लेना चाहिये ॥१७॥

शैलेन्द्र निष्ठान्सुदरिद्र विप्रान्
निःसम्बलान् कृष्णरसैकमग्नान् ।
सेवानुकूल्यार्थ–धनाशनाद्यै—
र्यः सेवते तस्य वशे हि कृष्णः ॥१८॥

जो लोग श्रीगिरिराजजी में यावज्जीवन निष्ठा पूर्वक निवास करते हैं, और जिनके पास कुछ भी द्रव्यादिक नहीं है, एवं जो दिवा, रात्रि एक मात्र श्रीकृष्ण-भजन के आनन्द में निमग्न रहते हैं, तथा जो अतिशय दरिद्र ब्राह्मण हैं; ऐसे लोगों की सेवा के आनुकूल्य करने के लिये जो धन, भोजन, वस्त्र व वृत्ति इत्यादिक देकर सेवा करते हैं, निश्चय जानो कि श्रीकृष्ण तो उनके वश में ही हैं ॥१८॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्रीगिरिराजोत्पत्ति वर्णनं
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

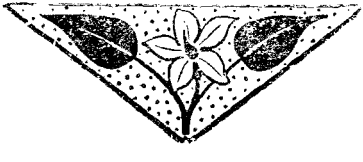

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥

गोवर्द्धन ! नमस्तुभ्य मसीम गुणशालिने ।
गोलोक-मौलये प्रेमदायिने चानपायिने ॥१॥

हे श्रीगोवर्द्धन ! आप असीम गुणशाली हैं, और श्रीगोलोक के मुकुट मणि एवं श्रीकृष्ण प्रेम को प्रदान करने वाले हैं; ऐसे हे अविनाशिन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥१॥

नवेन्दीवरा च्छ्रेष्ठ नीलाश्मकान्त्या
सदोद्दीपितो दिक्षु कृष्णानुभावः ।
गिरीन्द्रस्य रूपं न कस्यापि वर्ण्यं
नराणां सुराणां च गेयं प्रणम्यम् ॥२॥

जो सद्यः प्रस्फुटित नील कमल से भी उत्कृष्ट इन्द्र नील मणि मय कान्ति के द्वारा सर्वदा सर्व दिशाओं में श्रीकृष्णचन्द्र के रूप, गुण, लीला व महिमा सम्बन्धीय अनुभावों को उद्दीपन कर रहे हैं; ऐसे श्रीगिरिराज महाराज के स्वरूप माधुर्य को क्या कोई वर्णन कर सकता है ? नहीं; कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है । इसलिये आप मनुष्यों के एवं देवताओं के सर्वदा गान करने योग्य तथा प्रणाम करने के योग्य हैं ॥२॥

नित्यं विहरते यस्य कुञ्जेषु राधया हरिः !
किमलभ्यं प्रसादा त्तदर्शनात् सेवना न्नृणाम् ॥३॥

जिन श्रीगिरिराजजी के कुञ्जों में श्रीराधिकाजी के साथ श्रीकृष्णचन्द्र नित्य विहार करते हैं, ऐसे श्रीगिरिराज महाराज के दर्शन करने से, तथा भक्ति पूर्वक सेवा करने से, एवं उनकी प्रसन्नता से मनुष्यों को कौन सी वस्तु अलभ्य है, अर्थात् सर्व प्रकार मनो वाञ्छित वस्तु का लाभ होता है ॥३॥

विष्णु वद् गिरिराजस्य-सेवां भक्त्या करोति यः
स प्रेमभक्ति माप्नोति सर्वतीर्थफलं च वै ॥४॥

जो मनुष्य भक्ति पूर्वक श्री विष्णु के सदृश श्रीगिरिराज महाराज की सेवा पूजा करता है, वह निश्चय करके प्रेमलक्षणा भक्ति तथा समस्त तीर्थों के फल को भी प्राप्त होता है ॥४॥

किशोरौ राधिका कृष्णौ गिरिराजस्य कन्दरे।
भाव भूषित सर्वाङ्गौ प्रोन्मदानङ्ग केलिभिः ॥५॥
यापयन्तौ महानन्द सिन्धु मग्ना बहर्निशम्।
यो भजे देकभावेन तत्पादाब्ज महं भजे ॥६॥

युग्मकम् ॥

श्रीगिरिराजजी कन्दराओं में जो प्रकृष्ट उन्मत्त अनङ्ग केलि समूह के द्वारा सर्वाङ्ग में सात्त्विक भावरूपी भूषणों से विभूषित होते हुये महानन्द समुद्र में निमज्जित होकर दिवा रात्रि को यापन कर रहे हैं; ऐसे नित्य किशोर व नित्य किशोरी श्रीश्री राधाकृष्ण युगल सरकार का जो निरन्तर अनन्य भाव से अर्थात् मधुर रसमय भाव से भजन करते हैं, मैं उन रसिक श्रेष्ठों के चरणारविन्दों का भजन करता हूँ ॥५।६॥

जित मरकत हेम प्रोन्मदानन्द धाम्नो
रसिक मिथुनयोर्वै नित्य लीला कलापम्।

गिरिवर तट देशे ये स्मरन्त्यष्टयामं
विरहित जनसङ्गा स्तान् सुभक्तान् भजेऽहम् ॥७॥

श्रीगिरिराजजी की तरहटी में मरकत मणि व स्वर्णकान्त मणि की कान्ति को तिरस्कार करने वाले प्रकृष्ट उन्मत्त आनन्द मय स्वरूप रसिक युगल के जो नित्य लीला समूह होते रहते हैं, तिन लीलाओं को समस्त जन सङ्ग परित्याग करके जो लोग एकान्त में बैठकर आठों पहर स्मरण करते हैं, उन उत्तमाधिकारी भक्त श्रेष्ठों को मैं भक्ति पूर्वक भजन करता हूँ ॥७॥

शैलेन्द्रं धरणी तले तनुभृतां दातुं स्वभीष्टं फलं
प्रादुर्भूत मिमं प्रवृद्ध सुषमा नन्दैक साम्राज्यवत् ।
ये संसार महाम्बुधौ निपतिता मुक्ताः सुभक्ताश्च ये
देव्यो देवगण स्त्वहो सकृदपि प्रेक्ष्यैव मुह्यन्त्यलम् ॥८॥

अहो ! प्रकृष्ट रूप में वृद्धिशील अतिशय शोभा व आनन्द के अद्वितीय साम्राज्य सदृश यह श्रीगिरिराज महाराज पृथिवी के बीच में देह धारी जीवों को अनायास में अभीष्ट फल प्रदान करने के लिये प्रकटित हैं। इसी कारण से जो संसार रूपी महा-सागर में सम्पूर्ण रूप से गिरे हुये हैं, और जो मुक्तगण तथा श्रेष्ठ भक्तगण एवं देवतागण व देवीगण एक बार मात्र श्रीगिरिराजजी की विश्व-विमोहिनी शोभा माधुरी को देखते हो अतिशय मोहदशा को प्राप्त हो जाते हैं ॥८॥

महा पतिता नास्तिकान्, सर्वापराध ग्रस्तानपि ।
गिरिराजोऽय मचिन्त्य, प्रभावेन पुनाति सुभक्त्या ॥९॥

जो महा पतित एवं घोर नास्तिक हैं, और सर्व प्रकार अपराधों करके ग्रस्त हैं; ऐसे लोगों को भी श्रीगिरिराज महाराज

अपने अचिन्त्य प्रभाव से उत्तमा भक्ति प्रदान करके परम पवित्र बना देते हैं ॥९॥

गोवर्द्धनोपरि कदापि हि गौरभक्ता
नारोहयन्त्यहह गौरहरे र्निदेशात्।
वाञ्छन्ति ते यदि हरिं परि दर्शनार्थं
संदर्शयेत् स्वकृपया भगवां श्छलेन ॥१०॥

अहे ! बड़े आश्चर्य की बात है, कि इह कलियुग पावनावतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी की आज्ञा से ही श्री गौर भक्तगण कभी भी श्रीगिरिराजजी के ऊपर नहीं चढ़ते हैं। यदि कदाचित् उन भक्तों के मन में श्रीगिरिराजजी के ऊपर मन्दिरों में विराजमान श्री भगवत् स्वरूपों के उत्तम रूप से दर्शन करने के लिये प्रबल इच्छा होती है, तब श्री भगवान् स्वयं कृपा करके किसी ना किसी बहाने से उन लोगों को सम्यक् रूप से दर्शन प्रदान करते हैं ॥१०॥

स्पृशति यदि कदाचि च्छ्रद्धया हेलया वा
सकृदपि गिरिराजस्यैक मूर्त्तिं क्वचिद् यः।
द्विज-सुर-नरघाती तस्करो वान्तकाले
व्रजति स हरिलोकं स्वेष्ट दासत्व माप्य ॥११॥

जो कोई मनुष्य यदि श्रद्धा पूर्वक या अश्रद्धा पूर्वक भी श्रीगिरिराजजी की एक मूर्त्ति का कदाचित् कहीं भी एक वार मात्र स्पर्श कर ले, तो वह यदि ब्रह्म घाती या देवघाती अथवा नरघाती या तस्कर भी क्यों न हो, तथापि अन्त समय में अपने उपास्य देव के दासत्व को प्राप्त होकर श्री वैकुण्ठ लोक में गमन करता है ॥११॥

राधाकृष्णौ प्रणय विकलौ यस्य वल्ली द्रुमाणां
चित्वा पुष्पादि मुपकरणं श्लाघयन् सञ्जुषाते ।
स्नानाद्यं यत्सरसि कुरुतः क्रीड़तः कन्दराद्यौ
शैलेन्द्रं तं भुवन महितं को न सेवेत विज्ञः ॥१२॥

प्रेम में विह्वल श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल, श्रीगोवर्द्धन स्थित वृक्ष लताओं के पुष्पादि उपकरणों को चयन करके बड़ी प्रशंसा करते हुए सेवन करते हैं, एवं जिनके सरोवर व कुण्डादिकों में स्नान व जल विहारादिक करते हैं, तथा कन्दरा एवं कुञ्जादिकों में नाना प्रकार क्रीड़ा कौतुक करते हैं; ऐसे चौदह भुवन पूजित श्रगिरिराज महाराज की शास्त्रज्ञ होकर कौन नहीं सेवा करते हैं ? अर्थात् जो सेवा नहीं करते हैं, वे वास्तव में अतत्वज्ञ ही हैं ॥१२॥

मन्दारैः स्थल पङ्कजै र्दमनकै र्नीपै र्द्रुमैश्चम्पकै—
र्जाती-कुन्द-जवा-विशोक-वकुलैः सत्कर्णिकारै स्तथा ।
वासन्ती-नवमालती-सुगणिका-सेफालिका मण्डपैः
सर्वर्त्तु स्त्विह सेवितुं निवसति श्रीशैलराजं सदा ॥१३॥

मन्दार, स्थलपद्म, दमनक, केलिकदम्ब, पारिजात, चम्पक, चमेली, कुन्द, जवा, अशोक, मौलसिरी व उत्तम कनेर इत्यादि पुष्प-वृक्षों के द्वारा, तथा वासन्ती, नव मालती, स्वर्णजूही व हारशृंगार इत्यादिक पुष्प-मण्डपों के द्वारा समस्त ऋतुगण श्रीगिरिराज महाराज की सेवा करने के लिये अपने-अपने वैभव को लेकर सर्वदा यहाँ पर निवास करते हैं ॥ १३ ॥

यानीच्छन्ति हरेः कान्ताः कुसुमानि फलानिच ।
तदा तानि प्रसूयन्ते गोवर्द्धन-लतादुमाः ॥ १४ ॥

श्री श्रीराधा कृष्ण के सेवा-सौष्ठव सम्पादन के लिये श्रीकृष्ण-प्रियागण जिस समय जो पुष्प एवं फलों की इच्छा करती हैं, श्रीगोवर्द्धन स्थित लता एवं वृक्षावली तत्क्षणात् उन्हीं पुष्प व उन्हीं फलों का प्रसव कर सेवा के आनुकूल्य किया करते हैं ॥१४॥

ये शस्ता नित्यमुक्ता व्रतति तति युताः कृष्णसौख्यैक मग्ना
निर्दोषा नित्यनव्याः फल कुसुमभरा नम्रशाखाश्च नित्याः।
तत्त्वे सङ्कर्षणाशांत् प्रकट सुरतरून् शीतल च्छाययाढ्यां-
स्तान् भक्त्या दिव्य गोवर्द्धन-तरुनिकरान् नौमि सर्वर्त्तु
सेव्यान् ॥१५॥

जो वृक्ष समूह सर्वथा प्रशंसा के योग्य, नित्यमुक्त, सर्व प्रकार दोषों से रहित, एक मात्र श्रीकृष्ण-सम्बन्धीय सुख में ही निरन्तर निमग्न, नित्य नव नवायमान, लता समूह के द्वारा परिवेष्टित, और जिनके शाखा समूह फल एवं पुष्पों के बोझ से अवनत व सुशीतल छाया युक्त, तथा सर्वदा षड्ऋतुओं से सुसेवित, एवं तत्त्व में जो नित्य व श्रीसङ्कर्षण देवके अंश से प्रकटित कल्प-पादप हैं; ऐसे मनोहर श्रीगोवर्द्धन-स्थित उन वृक्ष समूहों को मैं भक्ति पूर्वक निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥

सोऽयं सुरेन्द्र कदनाद व्रजदुःख हारी
राधा व्रजेन्द्र सुतयो र्विरहोत्पहारी।
स्नेहा न्मुनीन्द्र कुल-ताप कुलापहारी
राजद् गिरीन्द्र इह दर्शक-चित्तहारी ॥ १६ ॥

अये! जो देवराज इन्द्र के अत्याचारों से व्रजवासियों के दुःख समूहों को दूर करने वाले हैं, एवं श्रीराधिका व श्रीव्रजराज

नन्दन के परस्पर विरह जनित उत्कण्ठा को अपहरण करने वाले हैं, और स्नेह परवश होकर मुनीन्द्र समूह के निखिल तापों को निवारण करने वाले हैं, तथा जो अपने दर्शन करने वालों के चित्त को चुरा लेते हैं; यहाँ पर सोई ये श्रीगिरिराज महाराज विराजमान हैं ॥ १६ ॥

परिहित कटि विद्युन्निन्दि पीताम्बरोऽयं
मधुर मुरसि हारं वैजयन्तीं दधानः।
कर धृत कलवेणुं वादयन् स त्रिभङ्गो
विलसति गिरिपट्टे राधिका-प्राणनाथः ॥ १७ ॥

जो कटि देश में विद्युत कान्तिको तिरस्कार करने वाले पीत वर्ण पट्टवस्त्र पहिने हुये हैं, और वक्षःस्थल पर मनोहर मणि-मुक्तादि निर्मित हारों के साथ पञ्चवर्ण पुष्प या पञ्च प्रकार रत्नों से विनिर्मित वैजयन्ती माला को धारण किये हैं, एवं ललित त्रिभङ्ग होकर करकमलों में मधुर-मधुर वेणुको बजाते हुये, देखो देखो ! सोई ये श्रीराधिकाजी के प्राण वल्लभ श्रीकृष्ण, श्रीगोवर्द्धन पर्वत के ऊपर विशेष रूप में शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १७ ॥

श्रीगोवर्द्धन–शिखरेषु कृष्णराधे
दृष्ट्वारात् सचपल मेघ मेव मत्वा।
केकाभि र्ध्वनित दिश स्त्विमे मयूरा
नृत्यन्त्युन्मद विकलात् प्रसार्य्य पिञ्छान् ॥१८॥

श्रीगोवर्द्धन के शिखरों में भ्रमण करने वाले श्री श्रीराधाकृष्ण की कान्ति पटली को दूर से दर्शन करके सौदामिनी सहित नव जलधर ही समझ कर देखो-देखो ! ये मयूरगण 'केका-केका' शब्द

के द्वारा दिङ्मण्डल को प्रति ध्वनित करते हुये अतिशय आनन्द के उद्रेक से विह्वल होकर पुच्छ प्रसारित करके नृत्य कर रहे हैं ॥ १८ ॥

प्राणायच्छुक–कोकिलं श्रुतिहरं वंशी निनादं हरेः
सर्वत्रैव मयूर ताण्डवपरं प्रोत्फुल्ल वल्ली द्रुमम् ।
भाजन्मञ्जु–निकुञ्जपुञ्ज मनिशं दिव्यैर्विचित्रं मृगै–
र्नाना कुण्ड-सरोभि रद्भुत मिमं ध्यायामि गोवर्द्धनम् ॥१९॥

जहाँ पर शुक व कोकिलादि पक्षिसमूह पञ्चम स्वर से गान कर रहे हैं, और जहाँ पर श्रीकृष्ण की सुमधुर वंशी ध्वनि श्रवणेन्द्रिय को हरण कर रही है, एवं सर्व दिशाओं में मयूर समूह ताण्डव नृत्य कर रहे हैं, तथा बहुविधि लता व वृक्षावली फल फूलों से प्रफुल्लित हैं, और सर्वत्र ही मनोहर कुञ्ज समूह शोभायमान हैं, एवं मनोहर क्रीड़ा परायण हरिण समूह के द्वारा परिव्याप्त हैं, तथा नाना प्रकार कुण्ड व सरोवर समूह के द्वारा आश्चर्य्य जनक हैं; ऐसे श्रीगिरिराज महाराजजी का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ ॥१९॥

सदाऽऽपतित पावनं भव समुद्र भीतऽवनं
विशाल तनुधारिणं निखिल माधुरी मण्डितम् ।
अनन्त महिमार्णवं विविध केलि कुञ्जान्वितं
भजामि हरिराधयो रमण गेह–गोवर्द्धनम् ॥२०॥

जो सर्वदा अपने समीप में समागत जनों के पवित्र करने वाले अथवा महापतितों के उद्धार करने वाले हैं, और संसार रूपी समुद्र से भयभीत जनों की रक्षा करने वाले, एवं निखिल

माधुर्य के द्वारा सुशोभित हैं। जो अनन्त महिमा के सागर स्वरूप एवं विविध क्रीड़ा कुञ्ज समूह से समन्वित हैं; ऐसे सुविशाल मूर्त्तिधारी श्री श्रीराधामाधव के क्रीड़ा भवन श्रीगिरिराज महाराज का मैं सर्वदा भजन करता हूँ ॥२०॥

यद्रूपं लोकयन्तः सकृदपि हृदये वा स्मरन्तः कदाचिद्
यत्पुष्पं घ्रातवन्तः क्वचन विदधतो यद्दिशे वन्दनञ्च ।
यत्कुञ्जे ष्वावसन्तो विधिभव-महितं क्वापि देशेच मृत्वा
प्राप्स्यन्त्येवापि सर्वे गिरिनृप-चरणाम्भोरुहं दिव्यदेहैः ॥२१॥

जिन लोगों ने अपने जन्म भर में एक बार भी श्रीगिरिराज जी के स्वरूप का अवलोकन अथवा हृदय में स्मरण किया है, या कदाचित् श्रीगिरिराजजी में प्रस्फुटित कोई एक पुष्प को एक बार सूँघ लिया है, किम्वा कहीं भी रह करके जिसकी दिशा की ओर भी एक बार नमस्कार किया है, अथवा जिसको कुञ्जों में आकर किसी प्रकार से भी एक दिन निवास किया है; वे लोग यदि किसी अन्य देश में भी देह त्याग करें, तथापि निश्चय करके दिव्य देह धारण कर, ब्रह्मा व शङ्कर के द्वारा सुपूजित श्रीगिरिराजजी के चरण कमलों को प्राप्त हो जायेंगे ॥२१॥

यद् गोवर्द्धन कन्दरे विलसतः श्रीराधिका माधवौ
नाना केलि विलास वैभव निधी श्रीरास नृत्योन्मुखौ।
माधुर्य्यामृत वारिधी प्रियसखी श्रेणीभि रासेवितौ
को वा तद्विभवं हि वर्णितु मलं शक्तः सहस्रं युगम् ॥२२॥

जिन श्रीगोवर्द्धन की कन्दराओं में नाना प्रकार के केलि विलास वैभव के आश्रय स्वरूप एवं माधुर्य रूपी अमृत के समुद्र

स्वरूप श्री श्रीराधामाधव युगल प्रिय सखी समूह के द्वारा सम्यक् रूप से सेवित होते हुए श्रीरास-नृत्य विषय में उन्मुख होकर विशेष रूप से उल्लास को प्राप्त होते हैं। उन कन्दराओं के माहात्म्य को सहस्र युग पर्यन्त वर्णन करते हुए भी कौन ऐसा है कि जो सम्पूर्ण रूप से वर्णन करने के लिये समर्थ हो सके ? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है ॥२२॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये श्रीगिरिराज प्रभाव वर्णनं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

नवमोऽध्यायः ॥

नौमि गोवर्द्धनं श्रीदं सर्वेषां मोदवर्द्धनम्
ध्येयं सेव्यं सदाभक्त्या सर्वाभीष्ट प्रदं चवै ॥१॥

जो समस्त जीवों को धन सम्पत्ति प्रदान करते हैं, व सबके आनन्द को वर्द्धन करते हैं, और सबके सर्व प्रकार मनोवाँछित फल को प्रदान करते हैं, एवं जो सबके लिये सर्वदा ध्यान करने योग्य तथा सेवा करने के योग्य हैं; ऐसे श्रीगिरिराज महाराज जी को मैं भक्ति पूर्वक निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥१॥

शरणागत पालकं व्रजेशसुता द्यर्च्चित मापदापहम् ।
गिरिराज मचिन्त्य वैभवान्वित मालोकय सेवयप्रिय ॥२॥

हे प्यारे ! जो शरणागत जनों का पालन करते हैं, व समस्त विपदों का विनाश करते हैं, एवं जो मन-बुद्धि के अगोचर अचिन्त्य वैभव युक्त हैं, और श्रीव्रजराज नन्दन से लेकर समस्त व्रजवासी, मुनि, ऋषि, देवता व भक्तवृन्द जिनके चरण कमलों की अर्च्चना करते हैं; तुम ऐसे श्रीगिरिराज महाराज की प्रेम से दर्शन एवं भक्ति पूर्वक सेवा करो ॥२॥

तीर्त्वा त्रैगुण्य विश्वं प्रिय नय तु मन श्चिन्मये ब्रह्मलोके
तस्योर्द्ध्वे दिव्य वैकुण्ठ मथ गमय तन्मूर्द्धिन् चानन्द सान्द्रम् ।
गोलोकं पश्य तस्मिन् रमय रसघने श्रील वृन्दावनान्ते
शैलेन्द्र स्याङ्गने त्वं निवस भज सदा राधिका कृष्णचन्द्रौ ॥३॥

हे प्यारे ! तुम तत्त्व ज्ञान के द्वारा इस त्रिगुणमय जगत् के पार होकर मायातीत चिन्मय ब्रह्मलोक में अपने मन को ले जाओ। उसके पीछे ब्रह्मलोक के ऊपर अप्राकृत श्रीवैकुण्ठ धाम में मन को प्रवेश कराओ। तदनन्तर उस वैकुण्ठ के मस्तक पर आनन्द घनीभूत श्रीगोलोक धाम का अवलोकन करो, और उस गोलोक बीच में घनीभूत आनन्दमय परम शोभायुक्त श्रीधाम वृन्दावन में मन को रमाओ। अनन्तर उस वृन्दावन के बीच में श्रीगिरिराजजी के आँगन में सर्वदा निवास करते हुये श्री-राधिकाजी के साथ श्रीकृष्णचन्द्र का निरन्तर भजन करो ॥३॥

यदीच्छेरादेहं गिरिनृप पदाब्जे निवसनं
सदा राधाकृष्णौ परिचरितु माशां च कुरुषे ।
तदा दम्भं त्यक्त्वा तदधि निवसन्तं हरिजनं
सुसेवस्व प्रेम्णा प्रणाम च सदा त्वं शृणुसखे ॥४॥

हे सखे ! सुनो यदि तुम मरण पर्यन्त श्रीगिरिराजजी के चरण कमलों में निवास करने को इच्छा करो, एवं सर्वदा श्री राधाकृष्ण की परिचर्य्या करने की आशा करो; तो अहंकार परित्याग करके श्रीगिरिराजजी के आश्रय में निवास करने वाले हरिभक्त जनों को सर्वदा प्रेम से नमस्कार करो, तथा उत्तम रूप से खूब सेवा करो ॥४॥

यावत्प्रेष्ठ भजन्ति नेन्द्रिय गणानैष्कर्म्य मात्यन्तिकं
नाहंता च भवेत् कुदेह ममता कालाग्निना भस्मसात् ।
तावच्छैल नृपस्य वर्णय गुणान्माहात्म्य माकर्णय
क्षिप्रं लोकय तस्य रूपमतुलं पादाम्बुजे लुण्ठय ॥५॥

हे प्यारे ! जब तक तुम्हारे इन्द्रियगण अतिशय विवशता को प्राप्त न होयँ, और जब तक तुम्हारे इस हाड़-माँस के देह में अहंता एवं ममता काल रूपी अग्नि के द्वारा भस्मसात् न होय, तब तक तुम श्रीगिरिराज महाराज की गुणावली को वर्णन करो, एवं उनके माहात्म्य का श्रवण करो, और उनकी निरुपम रूप माधुरी का शीघ्र ही दर्शन करो, तथा उनके चरण कमलों में खूब लोटो ॥५॥

श्रीगोवर्द्धन वन्दनाय सततं मूर्द्धाऽस्तुतद्दर्शने
नेत्रै तत्तट मार्जने करयुगौ जिह्वा गुणोत्कीर्त्तने ।
पादौ मेऽस्य चवै प्रदक्षिण विधौ सर्वांगमालुण्ठने
कर्णौ तद्विभव श्रुतौ मधुरतां स्मर्त्तुं नियुक्तं मनः ॥६॥

मेरा मस्तक निरन्तर श्रीगिरिराजजी की वन्दना के लिये और नेत्र श्रीगिरिराजजी के दर्शन के लिये, एवं दोनों हाथ श्रीगिरिराजजी की तरहटी में झाड़ू करने के लिये, जिह्वा श्रीगिरिराजजी की गुणावली को उच्च स्वर से संकीर्त्तन करने के लिये, पग श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा देने के लिये, कर्ण युगल श्रीगिरिराजजी की महिमावली श्रवण करने के लिये, तथा मन श्रीगिरिराजजी के श्रीमाधुर्य को स्मरण करने के लिये, नियुक्त हो, एवं समस्त इन्द्रियाँ श्रीगिरिराजजी की तरहटी में लोटपोट होती रहें । यही प्रार्थना है ॥६॥

सप्ताहं व्रज वासिनां वृजिनतो रक्षार्थमुत्कोदधद्
यस्मै कृष्ण उदार पाणि रमणैः सर्वोच्चमानं ददौ ।
राधा माधवयो र्विलास सफलो पस्कार राजद् गुहः
पर्यङ्कायित रत्नदीपित शिलो मांपातु गोवर्द्धनः ॥७॥

भगवान् श्रीकृष्ण व्रजवासियों को विपत्ति समूह से रक्षा करने के लिये उत्कण्ठित होकर जिनको अपने मनोहर अभय कर कमल पर सप्ताह पर्यन्त धारण करके सर्व पूज्यत्व रूप सम्मान प्रदान किये थे, तथा श्री श्रीराधामाधव के विलासोपयोगी उपकरणों के द्वारा जिनकी गुहा समूह सुशोभित हैं, एवं जिनके शिला समूह रत्नवत् प्रकाशमान पर्यंक के सदृश आचरण कर रहे हैं, ऐसे श्रीगिरिराज महाराज हमारी सदैव रक्षा करें ॥७॥

प्रभूत मनुशीलनाद विविधशास्त्रतात्पर्य्यकं
बुधैरपि न बुध्यते यदति गूढ़ तत्त्वादिकम् ।
तदप्यनुभवन्ति यत्किल कियद्दिनावासतः
सदैव हृदये मम स्फुरतु दिव्य गोवर्द्धनः ॥८॥

विविध शास्त्रों के तात्पर्य को पुनः-पुनः उत्तम रूप से आलोचना करके जिनका अति गोपनीय तत्त्व व माहात्म्य इत्यादिक को महा-महा पण्डितगण भी नहीं जान सकते हैं। परन्तु श्री गोवर्द्धन में अत्यल्प दिन मात्र निवास करते हैं, वे निस्सन्देह उन समस्त तत्त्वादिकों को अनुभव कर लेते हैं। सोई श्रीगिरिराज महाराज मेरे हृदय में सदा स्फुरित होते रहें।

यदि मयि कुरुदण्डं शैलराड् वानुकम्पां
त्रिजगति न भवत्तः काचिदन्या गति मे ।
निपततु यदि वज्रः शीकरो वाम्बुवाहा—
त्तदपि किल पयोदं चातकाल्यः स्तुवन्ति ॥९॥

हे श्रीगिरिराज महाराज ! चाहे आप मेरे लिए मेरी दुष्टता के अनुरूप प्रचुर परिणाम में दण्ड प्रदान करें अथवा निज अपार करुणामय स्वभाव से समस्त अपराधों को क्षमा करके

अतिशय अनुकम्पा ही विस्तार करें; परन्तु नवीन मेघ से यदि वज्रनिपतित हो, अथवा जलकणों का ही वर्षण हो, तथापि चातक श्रेणी जैसे मेघ की ही स्तुति करते रहते हैं. तैसे ये त्रिभुवन के बीच में आपके बिना मेरी और कोई अन्य गति ही नहीं है; अर्थात् जैसे मेघ वारि के बिना नदी, तालाब इत्यादिक के जल चातकों की तृष्णा निवृत्ति नहीं कर सकते हैं, तैसे ही आपके बिना ब्रह्मा शिवादिक अन्य कोई भी देवता मेरी श्रीकृष्ण दर्शन निमित्त पिपासा को निवृत्ति नहीं कर सकते हैं ॥९॥

कृपाम्बुधि र्वा किल निर्दयः स्याद्
गुणाम्बुधि र्वा गुण वर्जितोऽयम्
मण्यालयो वापि शिलामयो वा
गोवर्द्धनः प्रेष्ठ पति र्गतिर्मे ॥ १० ॥

हे प्यारे ! यह श्रीगिरिराज महाराज कृपा के समुद्र ही हों, अथवा अतिशय निर्दय ही हों, और गुणों के समुद्र ही हों, अथवा गुणों से रहित ही हों, एवं मणि समूह की खानि ही हों, अथवा केवल शिलामय ही क्यों न हों; यह श्रीगोवर्द्धन ही मेरे एक मात्र पति हैं और गति हैं ॥ १० ॥

सर्वापराध लिप्तोऽपि सर्व विघ्नाकुलोऽपि च ।
सर्व साधन शून्योऽपि गिरीन्द्रं न त्यजाम्यहम् ॥११॥

सर्व प्रकार अपराधों से लिप्त होते हुये भी, और सर्व प्रकार विघ्नों के द्वारा व्याकुल होते हुये भी, तथा सर्व प्रकार भजन-साधनों से रहित हो करके भी मैं श्रीगिरिराज महाराज को कदापि नहीं छोड़ूँगा ॥ ११ ॥

दहतु भुवन दाही तीव्र मार्त्तण्ड कोटिः
पततु शिरसि वेगाद् भीषणो वज्रकोटिः।
ददतु कठिन रोगा दुःसहं दुःखजालं
तदपि न गिरिराजं त्यक्तु मीशेऽहमल्पम् ॥१२॥

त्रिभुवन के दाह करने वाले प्रचण्ड किरण प्रकाशक कोटि-कोटि सूर्य मुझे भले ही दग्ध करें, और कोटि-कोटि भीषण वज्र भी प्रबल वेग से मेरे शिरपर गिरें, एवं कठिन से कठिन व्याधि भी मुझे असह्य दुःखों को प्रदान करें, तथापि मैं श्रीगिरिराजजी के चरण कमलों को अल्पमात्र भी त्याग करने को समर्थ नहीं हो सकूँगा ॥ १२ ॥

ध्रुवं गोवर्द्धनतटेऽतितुच्छ पथमार्जनी वरं च स्याम्।
तथाप्यन्यत्र साक्षाद् वैकुण्ठ वैभवमपि नेच्छाम्यहम्॥१३॥

मैंने तो ऐसा निश्चय किया है कि, श्रीगिरिराजजी की तरहटी में बरंच अतितुच्छ पथ मार्जनी (बुहारी) हो करके भी पड़ा रहूँगा, तथापि अन्यत्र साक्षात् अयाचित अप्राकृत वैकुण्ठ-वैभव की भी इच्छा नहीं करूँगा ॥ १३ ॥

क्लेशान शेषान् कलिकाल जातान्
सोढ्वाऽप्यहो मानकुलादिकं च।
त्यक्त्वा तृणात् स्वं च सुनीच मार्त्त
मत्वाऽपि शैलेन्द्रतटे वसामि ॥ १४ ॥

अहो ! कलि काल समुद्भूत अशेष प्रकार क्लेशों को सहन करके और मान, कुल, पूजा, प्रतिष्ठा व अहङ्कारादिक परित्याग करके अपने को तृण की अपेक्षा अतिनीच तथा श्रीकृष्ण विरह

से अत्यन्त दुःखित मान करके भी मैं श्रीगिरिराजजी की तरहटी में निवास करूँगा; परन्तु अन्यत्र कहीं भी नहीं जाऊँगा ॥ १४ ॥

महापापै ग्रस्तं नहि सुकृत लेशस्य विषयं
प्रभो त्वय्यक्षम्यै रसकृद पराधैःसुवलितम ।
न सेवां स्वप्नेऽत्रेषदपि कृतवन्तं चरणयोः
स्वभृत्यं स्वामीव त्यजतु वत गोवर्द्धन न माम् ॥१५॥

हे श्रीगिरिराज महाराज ! मैं महा पापों से ग्रस्त हूँ । मुझ में सुकृति का लेशमात्र भी नहीं है, और निरन्तर आपके पास जो क्षमा करने के योग्य नहीं है, ऐसे-ऐसे अपराधों को कर रहा हूँ । हाय ! मैंने यहाँ पर कभी ईषत् मात्र स्वप्न में भी आपके युगल चरणों की सेवा नहीं करी । अतः हे प्रभो ! स्वामी जैसे अपने भृत्य को कभी परित्याग नहीं करते हैं, तैसे आप भी मुझको अपने चरण कमलों से कदापि परित्याग न कीजिये ॥ १५ ॥

मूढ़ पतित मनाथं, भजनहीनं सर्वविघ्ना कुलञ्च ।
हे श्रीगिरिराज भव,—चरणाश्रितं मां कर्हि नोपेक्षय॥१६॥

हे श्रीगिरिराज महाराज ! मैं परम मूढ़, महा पतित, निराश्रय, भजन-साधन विहीन व सर्व प्रकार विघ्नों से व्याकुल हूँ; परन्तु मैंने आपके श्रीचरण कमलों का आश्रय लिया है । अतः आप मुझको कदापि उपेक्षा न कीजिये ॥ १६ ॥

भक्त—भगवद् द्रोहिणा, मपार नरका त्कदापि नोद्धारः ।
ज्ञात्वा पीत्थ मनाथं, दुष्कर्मकृतं गिरीन्द्र मामुद्धर ॥१७॥

श्रीभगवान् व श्रीभगवद्भक्तों के द्रोह करने वालों का अपार नरकों से कदापि उद्धार नहीं है । इस विषय में नाना शास्त्रों के

भूरि-भूरि प्रमाणों को जान सुन करके भी इस प्रकार बहुत से दुष्कर्म मैंने किये हैं, और कर भी रहा हूँ। अतएव हे श्रीगिरिराज महाराज ऐसा अत्यन्त अपराधी एवं अनाथ जो मैं हूँ, सो आप कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये ॥ १७ ॥

तथाहि स्कन्द पुराणे—

हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवा नाभिनन्दाति।
क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने पतनाति षट् ॥ १८ ॥
निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनाम्।
पतन्ति पितृभिः साद्धं महा रौरव-संज्ञिते ॥ १९ ॥
वैष्णवा विष्णुवत् पूज्या मम मान्या विशेषतः।
तेषां कृतेऽपमानेऽपि विनाशो जायते ध्रुवम् ॥ २० ॥

जो वैष्णवों को प्रहार करते हैं, अथवा उन लोगों की निन्दा करते हैं, या उनके प्रति विद्वेष करते हैं, किम्वा प्रणामादि द्वारा उन लोगों का आदर व अभ्यर्थना नहीं करते हैं, या उन लोगों के प्रति क्रोध प्रकाश करते हैं, अथवा उनको देख कर हर्ष को प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसे छै प्रकार आचरण करने वाले मनुष्य गण निश्चय करके नरक में गिरते हैं। जो मूढ़ लोग महात्मा वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे पितृ लोगों के साथ महारौरव नामक नरक में ही जाकर गिरते हैं। यमराज ने अपने किङ्करों को कहा है कि, हे दूतगण! वैष्णवगण तो साक्षात् श्रीविष्णु के तुल्य ही पूजनीय हैं, और वे लोग मेरे भी सम्मान के पात्र हैं। इसलिये उन वैष्णवों का जो अपमान करेंगे, सो अवश्य ही विनाश को प्राप्त होवेंगे ॥ १८।१९।२० ॥

तथाहि द्वारका माहात्म्ये—

पूजितो भगवान् विष्णु र्जन्मान्तर-शतैरपि।
प्रसीदति न विश्वात्मा वैष्णवे चापमानिते ॥ २१ ॥

जो मनुष्य वैष्णवों का अपमान करते हैं, वे यदि शत-सहस्र जन्म पर्यन्त भी श्रीविष्णु भगवान् की पूजा-सेवा करें, तो भी विश्वात्मा भगवान उनके ऊपर प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ २१ ॥

तथाहि श्रीमद्भागवते—

आयुःश्रियं यशो धर्म्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥२२॥
निन्दां भगवतः शृण्वं स्तत् परस्य जनस्य वा।
ततो नापैति यःसोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥२३॥

काय-मन-वचन के द्वारा महत् पुरुषों का उल्लङ्घन या अनादर करने से मनुष्य की आयु, लक्ष्मी, यश, धर्म व धर्म-साध्य स्वर्गादि लोक एवं सर्व प्रकार अभीष्ट तथा यावतीय मंगलों का नाश हो जाता है। जो श्रीभगवान् व भगवद्भक्तों की निन्दा सुन कर तत्क्षणात् उस जगह से उठ करके नहीं चले जाते हैं, वे समस्त सुकृतों से भ्रष्ट होकर नरकगामी होते हैं ॥ २२।२३ ॥

तथाहि बृहन्नारदीये नवमेऽध्याये—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि अवज्ञां कुरुते तु यः।
महत्सु तस्य नश्यन्ति श्रेयोऽपत्य धन क्रियाः ॥२४॥

ज्ञान पूर्वक ही हो अथवा अज्ञान पूर्वक ही हो, जो महत् पुरुषों की अवज्ञा करता है, उसको सर्व प्रकार मङ्गल, सन्तान, सम्पत्ति एवं समुदाय कार्य ही विनष्ट हो जाते हैं। किसी प्रकार से भी उसका मङ्गल होता ही नहीं है ॥ २४ ॥

त्यक्त्वा स्निग्धस्वजन विषयादींश्च गोवर्द्धन त्वत्
पादाब्जान्ते शरण मगमं रक्षको नास्ति मेऽन्यः ।
त्वय्यज्ञानाद् करव महं दुर्निवारा पराधं
क्षन्त्वा राधा चरण कमले दर्शय स्वैर्गुणौघैः ॥ २५ ॥

हे श्रीगोवर्द्धन ! मैंने अपने स्नेही बन्धुजनों को तथा गृह सम्पत्ति आदि सर्व प्रकार सुख भोगों को परित्याग कर आपके श्रीचरण कमलों में शरण ली है, और आपके पास अज्ञानता प्रयुक्त दुर्निवार असंख्य अपराध कर रहा हूँ। मेरा और कोई दूसरा रक्षक भी नहीं है। अतः आप अपने कृपालुता आदि गुणों से मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर एक बार मुझे श्रीवृषभानु नन्दिनी के चरण कमलों का दर्शन करा दीजिये। यही मेरी सदैन्य प्रार्थना है ॥ २५ ॥

स्थितिस्ते पादाब्जे गिरिनृप यथा स्यात् खलु तथा
कुरुष्व त्वं सेवा विरहित जनस्या ति कुधियः ।
प्रदेहि श्रीराधा गिरिधर पदाब्जेऽचलरतिं
सदान्तः सन्तापान् हरच मम कारुण्य जलधे ॥ २६ ॥

हे श्रीगिरिराज महाराज ! आप करुणा के समुद्र हैं। यह सेवा विहीन व अतिशय मन्दमति मादृश जनके जिस प्रकार से आपके चरण कमलों में सदैव निवास हो सके, तैसी ही कृपा कीजिये, और श्री श्रीराधा गिरिधारीजी के चरणारविन्दों में निरन्तर अविचल प्रीति प्रदान करके मेरे अन्तःकरण के सन्तापों को आप हरण कीजिये ॥ २६ ॥

न जाने साध्यं किं किलन विहितं साधनमपि–
स्वधीतं नो शास्त्रं न गुरुजन सेवा बत कृता ।
परं किञ्चित्कालं गिरिनृपतटे वासिनमिमं
स्वकारुण्या द्राधा चरण कमलं लोकय सकृत् ॥२७॥

साधन करने योग्य वस्तु क्या है, उसे मैं निस्सन्देह रूप से नहीं जानता हूँ, और कोई शास्त्र विहित साधन भी नहीं किया हूँ, तथा वेद पुराणादि शास्त्रों का उत्तम रूप से स्वाध्याय भी नहीं किया हूँ । हाय ! मैंने गुरुजनों की कुछ सेवा भी नहीं करी, परन्तु हे श्रीगिरिराज महाराज ! केवल आपकी तरहटी में कुछ काल निवास करने वाला जो मैं हूँ । मुझको अपने करुणामय गुण से एकबार श्रीवृषभानु नन्दिनी के चरण कमलों का दर्शन करा दीजिये । यही मेरी सविनय प्रार्थना है ॥ २७ ॥

गोवर्द्धन तवैवास्मि सर्वात्म शरणं गतः ।
कृपा कुरुष्व मे नाथ त्वय्यनन्त कृतागसे ॥२८॥

हे श्रीगोवर्द्धन ! मैं आप ही का हूँ, और मैं सर्वात्म करके आपकी शरणागत हूँ । शरण में आया हुआ अनन्त प्रकार का अपराधी जो मैं हूँ, हे नाथ ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥२८॥

त्वय्यर्पितमपि स्वल्पं द्रव्यं ह्यानन्त्य मृच्छति ।
शैलेन्द्र कुरु मां स्वात्म सान्मयात्मानमर्पितम् ॥२९॥

हे श्रीगिरिराज महाराज ! आपके लिये समर्पित अत्यल्प मात्र वस्तु भी असीमता को प्राप्त हो जाती है । मैं आपके चरण कमलों में मन बुद्धि इन्द्रिय सहित आत्म समर्पण करता हूँ । हे

प्रभो ! मुझे आप आत्मसात् कीजिये, अर्थात् सदा के लिये अपना अधीन सेवक बना लीजिये । यही मेरी प्रार्थना है ॥२६॥

हे गोवर्द्धन गिरिराज देह मेतद्
विक्रीतं त्वयि मन इन्द्रियैः सहैव ।
राधामाधव चरणारविन्द सेवां
मह्यं किं किल न ददासि दास बुद्धया ॥३०॥

हे गोवर्द्धन ! हे श्रीगिरिराज महाराज ! मैंने अपने मन व इन्द्रियों के साथ यह शरीर आपके चरणों में बेच दिया है । अतः मुझको अपना दास समझ कर क्या श्रीराधामाधव के चरणारविन्दों की प्रेम सेवा मेरे लिये नहीं देओगे ? ॥३०॥

मधुरिपु भुज दण्डोच्छत्र भावं विभृत्वा
विदलित सुरराजोच्चण्ड गर्वाचलेन्द्र ।
व्रज नव तिलकत्वे व्यक्त गोवर्द्धन त्वं
स्वचरण तट वासं देहि देहान्तिमे नः ॥३१॥

हे श्रीगिरिराज महाराज ! आप मधुसूदन श्रीकृष्ण के भुज दण्ड पर उत्कृष्ट छत्र भाव को धारण करके देवराज इन्द्र के प्रचण्ड गर्व को दलन किये हैं, और आप व्रजमण्डल के नवीन तिलक रूप से प्रकटित हैं; ऐसे हे श्रीगोवर्द्धन ! आप हम लोगों को देह के अन्त समय अपने श्रीचरण प्रान्त में निवास दीजिये; यही प्रार्थना है ॥३१॥

रसनिधि नवयूनोः प्रेमकेलेः सुसाक्षिन्
त्रिजगति हरिदास श्रेष्ठ गोवर्द्धन त्वम् ।

अगणित रविकान्त्युद्भासित श्यामरूप—
स्वचरण तट वासं देहि देहान्तिमे नः ॥३२॥

रस के समुद्र स्वरूप नवीन युगलकिशोर श्रीराधाकृष्ण के प्रेममय केलि विलास के उत्तम साक्षी स्वरूप, और त्रिभुवन स्थित निखिल हरिदासों के बीच में सर्वश्रेष्ठ, एवं अगणित सूर्य कान्ति के द्वारा देदीप्यमान श्याम रूप जिनका है; ऐसे हे श्रीगोवर्द्धन ! आप हम लोगों को इस देह के अन्त समय अपने श्रीचरण प्रान्त में निवास दीजिये; यही प्रार्थना है ॥३२॥

गुण मणि खनि सर्वाभीष्ट दातो मुरारेः
प्रचुर मदन केले र्मन्दिर श्री गिरीन्द्र ।
त्वमखिल वृजिनघ्ना पार माधुर्य सिन्धो
स्वचरण तट वासं देहि देहान्तिमे नः ॥३३॥

हे सद्गुण रूपी मणियों की खानि ! हे सर्वाभीष्ट प्रदाता ! हे श्रीकृष्णचन्द्र के प्रचुर कन्दर्प-केलि के मन्दिर स्वरूप ! हे श्री गिरिराज महाराज ! आप अखिल पापों के नाश करने वाले हैं, और अपार माधुर्य के समुद्र स्वरूप हैं; ऐसे हे प्रभो ! आप हम लोगों को इस देह के अन्त समय अपने श्रीचरण प्रान्त में निवास दीजिये; यही प्रार्थना है ॥३३॥

अविद्ययान्धस्य पुराण भास्कराः
स्वभीष्टसिद्धयै बर कामधेनवः ।
त्रिताप दग्धस्य परामृतानि नः
पुनन्तु शैलेन्द्र—पदाब्ज रेणवः ॥३४॥

जो अविद्या ग्रस्त जीवों के अज्ञान रूपी अन्धकार को विनाश करने के लिये पुराण रूपी सूर्य स्थानीय हैं, और जीवों के उत्तम रूप से अभीष्ट सिद्धि के लिये श्रेष्ठ कामधेनु स्वरूप हैं, एवं त्रिताप जर्जरित जीवों के लिये परम अमृत अथवा परम मोक्ष स्वरूप हैं; ऐसे श्रीगिरिराजजी के चरण कमलों के रज समूह हम लोगों को सर्वदा पवित्र करें ॥३४॥

गोवर्द्धनेऽत्रानक दुन्दुभिः पुरा
लेभे विधातु स्तपसोत्तमान् वरान् ।
स्थित्वा चिरं मेऽपि भजं स्तथापि धिग्
धिग् जन्म न स्याद् यदि कृष्ण-दर्शनम् ॥३५॥

इन श्रीगिरिराजजी के समीप प्राचीन काल में श्रीआनक-दुन्दुभि महाराज ने तपस्या के द्वारा श्रीब्रह्माजी के पास से बहु प्रकार उत्तम-उत्तम बरदान प्राप्त किये थे। परन्तु मेरी तो श्रीकृष्ण दर्शन के बिना अन्य कोई कामना नहीं है, और मुझे भी यहाँ पर निवास करके भजन करते-करते दीर्घकाल व्यतीत हो गया है; तथापि यदि श्रीकृष्णचन्द्र के साक्षात् दर्शन नहीं हुए, तो हाय ! मेरे इस जन्म को बारम्बार धिक्कार है ॥३५॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये स्वाभीष्ट दैन्य-विज्ञप्ति वर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

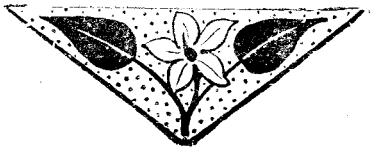

श्रीश्रीगिरिराज-माहात्म्यम् ॥

दशमोऽध्यायः ॥

हरिभक्ति विधायक मभीष्ट दायक मघ नायक मघ नाशकरं
बहु रत्नविमण्डित मर्च्चन पण्डित मव खण्डित जनताप मरम् ।
वन्दे सुरवन्दित पाद ममन्दित कुल मन्धित सुरराज मतिं
त्वांहि गोवर्द्धन ! स्वस्थिति गर्द्धन-परिवर्द्धन मघधारि रतिम्॥ १॥

हे श्रीगोवर्द्धन ! आप जगज्जीवों को श्रीहरिभक्ति प्रदान करते हैं, एवं उन लोगों को सर्व प्रकार अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। आप समस्त पर्वतों के अधिपति हैं, वयावतीय पापों को विनाश करते हैं, और आप नाना प्रकार रत्नों के द्वारा विभूषित हैं, तथा श्रीकृष्ण के आराधना विषय में परम पण्डित हैं, एवं आश्रितजनों के समस्त तापों को अपहरण करने वाले हैं। समस्त देवतागण आपके चरण कमलों की वन्दना करते हैं, और आपने अपनी महा महिमा के द्वारा समस्त पर्वत कुल को उज्ज्वल किया है, व देवराज इन्द्र की बुद्धि को भी स्तम्भित कर दिया है। आपके चरण कमलों में निवास करने के लिये लुब्ध चित्त जनों की अभिलाषा को आप सर्वथा परि पूर्ण करते हैं; ऐसे हे श्रीकृष्ण प्रेमास्पद श्रीगिरिराज महाराज ! आपके श्री चरण कमलों में मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥१॥

कुर्मोऽत्र किंवद सखे रस-रास केली
वैदग्ध्यजृम्भित महोन्मद विभ्रमेण ।
गोवर्द्धने प्रविलसद्द्वितेऽस्मदन्तो
ज्योतिर्द्वयं किमपि गौर महेन्द्र नीलम् ॥२॥

हे सखे ! श्रीगिरिराजजी में परमास्वाद्य रासादिक क्रीड़ा चातुर्यकरके उत्फुल्लित महान् उन्मत्त विलास के द्वारा प्रकृष्ट रूप में विहार परायण कोई अनिर्वचनीय गौर एवं इन्द्रनील मणि कान्ति विशिष्ट ज्योति युगल हमारे अन्तः करण को हरण कर रही है; अब इसमें हम क्या करें ? सो तुम बताओ ॥२॥

कदा शैल श्रेष्ठे जित जलद कान्तिं मधुपतिं
परीतं गोपीभिः कनक रुचिराभिः प्रमुदितम् ।
भ्रमन्तं गायन्तं च सकृदवलोक्य प्रणयत—
स्त्वहं संधावन्स्यां सुविकल मतिर्मोहकलितः ॥३॥

श्रीगिरिराजजी में अपनी श्री अंग कान्ति द्वारा जो नवीन जलधर कान्ति को तिरस्कार कर रहे हैं; ऐसे श्रीकृष्ण कनक कान्तिमयी व्रज सुन्दरियों से परिवेष्टित होकर आनन्द पूर्वक इतस्ततः भ्रमण करते हुए गान कर रहे हैं। ऐसे दृश्य को एक बार अवलोकन करके प्रेम के मारे दौड़ते हुए अतिशय व्याकुल चित्त से हा नाथ ! हा प्राणवल्लभ ! ऐसे कहते-कहते मूर्च्छित होकर गिर पड़ूँगा। हाय ! ऐसा दिन मेरा कब होगा ? ॥३॥

कदाशैलद्रोण्यां सुचिर सखी वृन्द वलये
नटन्तं गोविन्दं वृषवि सुताद्यैः परिवृतम् ।

विलोक्येत्थं वक्ष्ये रमण मुरली वादन पटो !
प्रसीद क्षिप्रं मां नय च निज दास्ये करुणया ॥४॥

ऐसा दिन मेरा कब होगा ? कि श्रीगिरिराजजी की कन्दरा में मंडलाकार अति मनोहर सखी समूह के बीच में श्रीवृषभानु नन्दिनी आदि के द्वारा परिवेष्टित होकर नृत्य कर रहे हैं; ऐसे श्रीगोविन्द को देखकर मैं ऐसा कहूँगा, कि हे रमण ! हे मुरली वाद्य विशारद ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, और कृपा करके अति शीघ्र ही अपनी दास्य सेवा में मुझे अंगीकार करो ॥४॥

कदा लीला स्थानं सकलमभिषिञ्चन्नयनजै—
र्जलैः कुञ्जे कुञ्जे गिरिनृप तटान्तष्वह मटन् ।
रटन् राधा राधेत्यनवरत मद्धा सुविकलो
विलोके श्रीराधा व्रजपति कुमारौ धृत करौ ॥५॥

श्रीगिरिराजजी की तरहटी में के प्रत्येक कुञ्ज कुञ्ज में अच्छी तरह घूमते हुए नेत्र जल के द्वारा लीला स्थली समूह को अभिषिक्त करते हुए, एवं निरन्तर हे राधे ! हे राधे ! इस प्रकार रटना करते हुए अतिशय व्याकुल होकर श्रीराधिकाजी के साथ श्रीव्रजराज कुमार दोनों परस्पर हाथ पकड़ कर खड़े हुए हैं। ऐसी अवस्था में हम उनका साक्षात् अवलोकन कब करेंगे ? ॥५॥

वपुर्वृद्धं हा धिक् तदपि नहि वृद्धा रसतृषा
श्लथं मर्मागानां तदपि मम मोहो न शिथिलः ।
रदाः शीर्णाः शीर्णस्तदपि नहि दम्भोवत कदा
गिरिद्रोण्यां शौरेश्चरण कलनाशा सफलिता ॥६॥

हाय ! मेरे जन्म को धिक्कार है। क्योंकि शरीर वृद्ध हो गया, तो भी मेरी प्राकृत षड्रस की तृष्णा निवृत्त नहीं हुई। सर्वाङ्ग सन्धि समूह शिथिल हो गये, तौ भी मेरी ममता शिथिल नहीं हुई। सब दाँत गिर गये, तौ भी मेरे अहंकार का नाश नहीं हुआ। हाय ! ऐसी दशा में श्रीगिरिराजजी की कन्दराओं में श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमलों की दर्शनाभिलाषा मेरी कब सफल होगी। ऐसा दिन मेरा कब होगा ? ॥६॥

त्यक्ताभिमानः सुविविक्त वासी
गोवर्द्धने देव मुनीन्द्र सेव्ये।
श्रीराधिका माधवयोः पदाब्जं
दृष्ट्वा कदा प्रेमभरेण सेवे ॥७॥

मैं सर्व प्रकार अभिमान को त्यागकर उत्तम निर्जन स्थान में निवास करके देवता एवं मुनिवरों के सेवनीय श्रीगोवर्द्धन में श्रीराधामाधव के चरण कमलों का दर्शन करके अतिशय प्रेम के साथ सेवा करूँगा, ऐसा दिन मेरा कब होगा ? ॥७॥

हरे कृष्ण महामन्त्रं जपन् गायन्नकिञ्चनः।
अश्रुभिरभिषेक्ष्यामि गिरिराज तटं कदा ॥८॥

मैं सर्व त्याग करके "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।" इस महा मंत्र का निरन्तर जप तथा उच्च स्वर से कीर्त्तन करते हुए अश्रु जल के द्वारा श्रीगिरिराजजी की तरहटी का अभिषेक करूँगा। ऐसा दिन मेरा कब होगा ? ॥८॥

हरेकृष्णेत्युच्चै निरवधि रटन् भूसुर गृहे
ष्वटन् भिक्षाप्तान्नै र्मधुप इव मे जीवन गतिम् ।
कदा निर्वाह्य श्री गिरिनृप तटे शेष समये
मरिष्ये सज्ञानो हरिदयित वृन्दैः परिवृतः ॥९॥

श्रीगिरिराजजी की तरहटी में 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' इस प्रकार उच्च स्वर से निरन्तर रटना करते हुये व्रजवासी ब्राह्मणों के घरों में से भिक्षा प्राप्त अन्न के द्वारा भौंराओं की तरह अपनी जीवन यात्रा को निर्वाह करके अन्त समय में श्रीहरिभक्तों द्वारा परिवेष्टित होकर ज्ञान पूर्वक श्रीभगवच्चरणाविन्द का ध्यान करते हुये इस शरीर को छोड़ दूँगा; हाय ! ऐसा दिन मेरा कब होगा ? ॥९॥

विगलित धृतवासे नृत्य गीताढ्य रासे
स्मित सुमधुर हासे प्रेम सीमा प्रकाशे ।
प्रमुदित दयितांसे सम्मिलद्बाहुपाशे (शां)
गिरिवर तटदेशे राधिकां कर्ह्यु पासे ॥१०॥

जो रास मण्डल के अन्तर्गत स्खलित अवस्था में पट्ट वस्त्र धारण किये हुये हैं, और नृत्य गीत वाद्यादि हो रहा है, सब के मुखारविन्द में सुमधुर मन्द मुसक्यान विराजमान है, और जहाँ पर प्रेम की पराकाष्ठा प्रकाशमान है, एवं प्रकृष्ट आनन्दित प्रियतम के स्कन्ध देश पर श्रीस्वामिनीजी की भुजा अर्पित है; ऐसे श्रीगिरिराजजी की तरहटी में श्रीवृषभानु नन्दिनी की साक्षात् सेवा करने का सौभाग्य मेरा कब होगा ? ॥१०॥

विलसद् गौरश्यामौ, मृदु कुसुम तल्पे शैलेन्द्र कुञ्जे ।
कन्दर्प केलि लोलौ, सुरसिक महितौ कदा मुदा सेवे ॥११॥

श्रीगिरिराजजी के कुञ्ज में सुकोमल कुसुम शय्या पर कन्दर्प क्रीड़ा विषय में अतिशय चञ्चल, परम-रसिक जन पूज्य पादाम्बुज, गौर एवं श्यामवर्ण नागर-नागरी युगल विलास कर रहे हैं। मैं आनन्द के साथ उनकी सेवा करूँगा, हाय! ऐसा दिन मेरा कब होगा ? ॥११॥

विलस द्राधाकृष्णौ, सन्तत मचल राजकन्दरं ।
भाव-भूषण-भूषितौ, गुर्वनुगतः कदा नु सेवे ॥१२॥

श्रीगिरिराजजी की कन्दरा में निरन्तर सात्विकादि भाव रूप भूषणों के द्वारा विभूषित होकर श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल सरकार जहाँ विलास कर रहे हैं, तहाँ हम श्रीगुरुरूपा-मञ्जरी के अनुगत होकर श्रीप्रिया प्रियतम की सेवा करेंगे; हाय! ऐसा दिन हमारा कब होगा ? ॥१२॥

कदारासे नृत्योन्मद रस विलासे गिरितटे
प्रहृष्टां नृत्यन्तीं वृषभविसुतां स्वालिवलये ।
समं श्रीकृष्णेन स्वरचित सुसङ्गीत कलया
भजेऽहं गायन्तीं कुसुम चमरेण प्रियतया ॥१३॥

श्रीगिरिराजजी की तरहटी में नृत्य के द्वारा उन्मत्त रसमय श्रीकृष्ण का विलास जहाँ पर हो रहा है; ऐसे श्रीरासमण्डल में अपनी सखी मण्डली से परिवेष्टित होकर श्रीकृष्ण के साथ स्वरचित उत्तम सङ्गीत कला के द्वारा गान करती हुई एवं नृत्य करती हुई परमानन्दिता श्रीवृषभानु नन्दिनी की पुष्प

निर्मित चँवर के द्वारा तथा पुष्प व्यजन के द्वारा प्रेम के साथ सेवा करूँगा; हाय ! ऐसा सौभाग्य मेरा कब होगा ? ॥१३॥

समुदित पुलकाद्याश्चर्य भावाति मुग्धौ
प्रचुर सुरत खेलायास तन्द्रालु नेत्रौ।
स्खलित वसन भूषौ कहिं राधा मुकुन्दौ
गिरिनृप तटदेशे पुष्पतल्पेऽभ्युपासे ॥ १४ ॥

जिनके श्री अंग अश्रु, पुलकादि आश्चर्य भाव समूह के द्वारा अतिशय मुग्ध हो रहे हैं, और नानाविध संभोग लीला से श्रम युक्त होकर जिनके नेत्र तन्द्रा युक्त हो रहे हैं, एवं जिनके वेष भूषा वसनादिक विगलित हो गये हैं; ऐसे श्रीराधा मुकुन्द की श्रीगिरिराजजी की तरहटी स्थित निकुञ्ज के बीच में कुसुम रचित शय्या के ऊपर सर्व प्रकार से सेवा करूँगा, ऐसी योग्यता मेरी कब होगी ? ॥ १४ ॥

या राधा सरसी तटे वन विहारा द्यांश्च या मानसी-
गंगायां तरणी विलास समये या श्रीगिरि द्रोणिषु।
श्रीगोवर्द्धन दान घट्ट पथिया शुल्कादि नेतुं छला-
त्तां प्राणेश्वरयो र्विलास लहरीं द्रक्ष्याम्य दूरात्कदा ॥१५॥

श्रीराधाकुण्ड के तट पर वन विहार, वंशीहरण, होरी, हिंडोला, मधुपान, जलकेलि, वेषभूषा, भोजन, शयन, पाशक क्रीड़ादि जो-जो लीला, और श्रीमानसी गंगा में नौका विलास के समय जो-जो लीला, एवं श्रीगिरिराजजी की कन्दराओं में रति क्रीड़ादि जो-जो लीला, तथा श्रीगोवर्द्धन स्थित दान घाटी के मार्ग में दान ग्रहण के बहाने से जो-जो लीलाऐं होती हैं, मेरे

प्राणेश्वर व प्राणेश्वरी की उन विलास लहरियों का साक्षात् दर्शन करूँगा। हाय! ऐसा दिन मेरा कब होगा? ॥ १५ ॥

वसन्नीलाद्रौ यश्चटक गिरिमौलेश्च कलनाद्
व्रजे साक्षान्मत्वा गिरिनृपमये लोकितु मितः।
व्रजामी त्युक्त्वैव प्रमद इव धावन्निपतितो
विलोके तं गौरं गिरिनृपतटेऽहं बत कदा ॥ १६ ॥

जो श्रीजगन्नाथजी में निवास करते हुए चटक पर्वत के शिखर का दर्शन कर उसको साक्षात् श्रीगिरिराज महाराज समझ कर हे भक्त गण! मैं श्रीगिरिराजजी के दर्शनार्थ यहाँ से श्रीव्रज में जा रहा हूँ। ऐसा कह कर उन्मत्तों की तरह दौड़ते हुए मूर्च्छित होकर गिर पड़े; ऐसे कलियुग पावनावतार श्री श्रीगौरांग महाप्रभुजी को श्रीगिरिराजजी की तरहटी में अवलोकन करूँगा; हाय! ऐसा सौभाग्य मेरा कब होगा? ॥ १६ ॥

गदित मिद मपूर्वं यः पठेद्भक्ति युक्तः
सुललित रस काव्यं प्रार्थना तत्त्व पूर्णम्।
रसयति शृणुयाद्वा शैलराज प्रभावं
स हि सदयित राधादास्य माप्नोति शीघ्रम् ॥१७॥

जो पहिले कहीं वर्णित नहीं है, ऐसे सुभाषित एवं प्रार्थना व तत्त्व पूर्ण मनोहर रस काव्य इस श्रीगिरिराज माहात्म्य नामक ग्रन्थ को जो भक्ति पूर्वक पाठ करेंगे व सुनेंगे तथा आस्वादन करेंगे, वे निश्चय करके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के साथ श्रीवृषभानु नन्दिनी के दासी भाव की सेवा को अति शीघ्र ही प्राप्त होवेंगे ॥ १७ ॥

शैलेन्द्रो दृष्ट मात्र स्त्वगणित कलुषादान्करोति प्रणष्ठान्
प्रेमात्माऽचिन्त्य शक्त्या त्रिभुवन महितो ब्रह्म रुद्रादि सेव्यः।
त्रैगुण्य स्पर्श शून्यो यदपि खलु मया तन्महिम्नि प्रलुब्धात्
क्षन्तव्यं वर्णित यत्तदिह करुणया ब्राह्मणै वैष्णवैश्च ॥१८॥

जो श्रीगिरिराज महाराज निज दर्शन मात्र से ही तत्क्षणात् जीवों के असंख्य पाप तापों को विध्वंस करते हैं, तथा जिनका स्वरूप प्रेम मय है एवं जो अपनी अतर्क्य व अचिन्त्य शक्ति के द्वारा त्रिभुवन में प्रपूजित हो रहे हैं, ब्रह्म रुद्रादि देवताओं के जो सेव्य हैं, तथा प्राकृत सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों के स्पर्श से जो रहित हैं; ऐसे होने पर भी मैंने उनकी महा महिमा विषय में प्रलुब्ध चित्त होकर जो कुछ वर्णन किया है, उसमें मेरी अज्ञानता व अनवधानता प्रयुक्त त्रुटि एवं धृष्टता इत्यादिक जो दोष रह गये हों, उनको अदोषदर्शी ब्राह्मण एवं वैष्णव गण कृपा करके क्षमा करेंगे ॥ १८ ॥

यत्पादाब्ज पराग सेवन फलाच्छ्री श्यामकुण्यां मुदा
श्रीगोवर्द्धन कन्दरे किलवसन् द्वाविंश वर्षाधिकम्।
श्री चैतन्य विलासकं पुनरिदं शैलेन्द्र माहात्म्यकं
शक्तोऽहं लिखितुं गुरुः सदयतां विघ्नाच्च मां रक्षतु॥१९॥

जिनके श्रीचरण कमल स्थित पराग सेवन के फल से श्रीगिरिराजजी की सुन्दर कन्दरा स्थित श्रीश्यामकुण्डी नामक स्थान में बाईस वर्ष से अधिक समय आनन्द पूर्वक निवास करता हुआ मैं पहिले श्रीचैतन्य विलास नामक ग्रन्थ, एवं पुनः इस श्रीगिरिराज माहात्म्य नामक ग्रन्थ को लिखने के लिये समर्थ हुआ; सोई

श्रीगुरुदेव सदैव मेरे ऊपर कृपा करें, और समस्त विघ्नों से मेरी रक्षा करें; यही प्रार्थना है ॥ १९ ॥

मन्त्वर्णाव-निमज्जन्तं सदा विघ्नै रुपद्रुतम् ।
मां कृपादृष्टि-यष्ट्याशूद्धरन्तु साधव स्ततः ॥ २० ॥

हे सन्तजनों ! मैं अपराधों के समुद्र में डूबा हुआ हूँ, और सर्वदा नाना प्रकार विघ्नों के द्वारा व्याकुल हो रहा हूँ । इस लिये आप लोग अपनी कृपादृष्टि रूपी लकुट के द्वारा अति शीघ्र ही मुझे उस अपराध समुद्र से उद्धार कीजिये ॥ २० ॥

श्रीशैलेन्द्र-पदारविन्द कृपया सत्सङ्ग सेवा फला-
दादिष्टाद् गुरु-वैष्णवैश्च बहु सच्छास्त्रानुभूत्यान्वितम् ।
काव्यं सद् ब्रजवासि-सम्मतितया शैलेन्द्र माहात्म्यकं
सद्ध श्याम कुटीस्थले प्रकटितं स्वस्थं समाप्तिं गतम्॥२१॥

श्रीगिरिराज महाराज के चरण कमलों की अहैतुकी कृपा से, और महात्माओं के सत्सङ्ग व सेवा के फल से, एवं श्रीगुरुदेव व ब्रजवासि-वैष्णवों की आज्ञा से, तथा पूजनीय श्रीब्रजवासियों की सम्मति से बहुविध भक्ति शास्त्रों की अनुभूति द्वारा युक्त यह 'श्रीगिरिराज माहात्म्य' नामक काव्य श्रीश्यामकुटी नामक सिद्ध-स्थल में प्रकटित होकर निर्विघ्न रूप से समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

साम्प्रदायिक साधुभ्यो वैष्णवेभ्यश्च भूरिशः ।
भक्तेभ्यो भक्त-भक्तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमोनमः॥२२॥

सर्व साम्प्रदायिक महात्माओं को व समस्त साम्प्रदायिक वैष्णवों को एवं निखिल भक्तवृन्दों को तथा उन भक्तों के अनुचर

वर्गों को, और समस्त ब्राह्मणों को मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥२२॥

राकायां वैक्रमीयाब्दे त्र्यधिक द्विसहस्रके ।
इदं स्वरूप कृष्णाख्य दासेन फाल्गुने कृतम् ॥२३॥

विक्रमी संवत् २००३ दो हजार तीन की फाल्गुन पौर्णमासी तिथि में श्रीस्वरूप कृष्णदास के द्वारा यह 'श्रीगिरिराज माहात्म्य' नामक ग्रन्थ विरचित हुआ ॥ २३ ॥

पक्षर्तु वेद-गौराब्दे श्यामकुट्यां हि फाल्गुने ।
ग्रन्थ-दिग्दर्शिनी भाषाटीकेयं पूर्णतामगात् ॥२४॥

श्री श्रीचैतन्याब्द ४६२ चारसौ बासठ के फाल्गुन मास में श्यामकुटी स्थान पर श्रीगिरिराज माहात्म्य नामक इस ग्रन्थ की 'दिग्दर्शिनी' नाम की यह भाषा टीका सम्पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

इति श्रीगिरिराज माहात्म्ये परमोत्कण्ठामयी प्रार्थना
वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥